❀ प्रस्तावना ❀

प्रिय सुज्ञ पुरुषो ! यह संसार चक्र द्रव्यार्थिक नय के मत से अनादि अनन्त है तथा काल की अपेक्षा इसे अनादि अनन्त कहते हैं क्योंकि इसकी उत्पत्ति वा अन्त दृष्टिगोचर नहीं है अतः इस संसार चक्र को अनादि अनन्त कहा जाता है किन्तु पर्य्यायार्थिक नय की अपेक्षा यह चक्र सादि सान्त देखा जाता है कारण कि समय २ पूर्व पर्याय का नाश और उत्तर पर्याय का उत्पाद दृष्टिगोचर होता रहता है।

जिस प्रकार हम एक पदार्थ के पूर्वपर्याय (हालत) की दशा को प्रथम क्षण में देखते हैं वह दशा उस पदार्थ की उत्तर क्षण में दृष्टिगोचर नहीं होती।

कारण कि सर्व द्रव्य परिणमन शील हैं इसी कारण मुमुक्षु जन इस अनित्य पर्याय वाले पदार्थों में किसी प्रकार से भी लिप्त नहीं हो सकते, प्रत्येक पदार्थ की पर्याय के मानने पर ही स्थिति मानी जा सकती है।

जीव अनन्त ज्ञान अनन्त दर्शन अनन्त सुख वा अनन्त शक्ति युक्त होने पर भी कर्मों के कारण नरक तिर्यक् मनुष्य और देव रूप पर्यायों को प्राप्त हो रहा है, फिर इन गतियों के सुख वा दुःख रूप अनुभवों को भोगता है।

जिस प्रकार कूप का मध्य भाग कहीं पर भी देखने में नहीं आता, ठीक उसी प्रकार संसार चक्र का भी मध्य भाग कहीं पर भी दृष्टिगोचर नहीं होता। आत्मा उत्पत्ति धर्म वाला नहीं है इससे सिद्ध हुआ कि अनादि काल से यह आत्मा इसी चक्र में अपने निज स्वरूप को भूल कर परिभ्रमण कर रहा है संसार की दृष्टि से अनुभव किया जाय तो अनन्त काल तक इस आत्मा ने तिर्यक् गति में ही कई जन्म व्यतीत किये हैं। क्योंकि शेष गतियों में अनन्त काल की काया स्थिति नहीं है उन में तो संख्यात वा असंख्यात काल की काया

स्थिति मानी गई है।

विचार कर देखा जाय तो यदि अब भी आत्म विकास का मार्ग ग्रहण न किया गया तो फिर वही तिर्यक् गति के काल में प्रविष्ट होना पड़ेगा।

कारण कि जब आत्मा निज विकास के मार्ग से पराङ्-मुख हो जाता है तब वह स्वकर्मों के कारण नाना प्रकार के कष्टों के ही भोगने का स्थान बन जाता है। अतएव विचार कर देखा जाय तो देव नारकीय वा तिर्यक् जीव सर्वथा आत्म विकास करने में असमर्थ हैं कारण कि उक्त जीवों के इस प्रकार के कर्मों का उदय होता है जो वे उस योनि में सर्वथा क्षय करने में अपनी असमर्थता रखते हैं अतः केवल एक मनुष्य योनि ही है जो आत्मा को सर्वथा विकास के मार्ग में ले जाने की योग्यता रखती है परन्तु इस योनि में आये हुए जीवों को फिर बहुत से सहकारी कारणों के मिलने की अत्यन्त आवश्यकता रहती है।

जिस प्रकार बीज आरोपण का समय ठीक मिल जाने पर भी फिर बीज उत्पत्ति के लिये भूमि आदि सहकारी कारणों की अत्यन्त आवश्यकता रहती है ठीक उसी प्रकार मनुष्य योनि में जब जीव आते हैं तब उनको आत्म विकास करने के लिये आर्य देश, आर्य कुल, दीर्घायु, पंचेन्द्रिय पूर्ण, नीरोग शरीर, धर्म कथा श्रवण आदि अनेक कार्य्यों के उपलब्ध होने की अत्यन्त आवश्यकता है, क्योंकि इन सहकारी कारणों के विना उपलब्ध किये आत्मा कभी भी आत्म विकास की ओर झुक नहीं सकता।

अब प्रश्न यह उपस्थित हो सकता है कि जब उक्त सह-कारी कारण सर्व प्रकार से उपलब्ध हो जाएं तब फिर कौन २ कारणों से आत्मा आत्म विकास करने में अपनी योग्यता

रखता है जिस से वह फिर आत्म विकास करने लगता है। उत्तर में आत्मविकास करने में शास्त्रकारों ने मुख्यतया दो ही कारण बतलाए हैं जैसे कि विद्या और चारित्र।

विद्या शब्द से सम्यग् दर्शन, सम्यग् ज्ञान का ही ग्रहण किया गया है क्योंकि जब तक आत्मा सम्यग् दर्शन से वंचित रहता है तब तक काल पर्यन्त वह मिथ्या हठ से ग्रसित रहता है अतएव सम्यग् दर्शन के साथ ही फिर उस जीव को सम्यग् ज्ञान की प्राप्ति हो जाती है। यदि ऐसे कहा जाय कि जब दर्शन (निश्चय) और ज्ञान हो गया तब फिर सम्यग् शब्द के साथ जोड़ने की क्या आवश्यकता है। इस शंका के समाधान में कहा जाता है कि संशय विपर्यय और अनध्यवसाय ये तीनों मिथ्या ज्ञानों के निरास करने के लिये सम्यग् शब्द की संयोजना की गई है। क्योंकि संशयात्मक ज्ञान पदार्थों का यथार्थ ज्ञान कराने में स्वयं असमर्थता रखता है जिस प्रकार आंखों की पीड़ा वाला पुरुष भली प्रकार से पुस्तकावलोकन करने में अपनी असमर्थता धारण करने लग जाता है ठीक उसी प्रकार संशयात्मक ज्ञान पदार्थों के पूर्ण बोध कराने में असमर्थता रखता है; जिस प्रकार उक्त ज्ञान अपनी असमर्थता सिद्ध करता है ठीक उसी प्रकार विपर्यय ज्ञान जैसे शुक्ति में रजत अर्थात् सीप में चांदी की बुद्धि यह ज्ञान भी मिथ्या ज्ञान ही है क्योंकि इस के द्वारा भी पदार्थों का यथार्थ बोध नहीं हो सकता।

तृतीय जो अनध्यवसाय ज्ञान है वह भी पदार्थों के यथार्थ बोध से पराङ्मुख ही रखता है जैसे कि चलते हुए पुरुष के पाद (पग) में कांटा वा तृणादि पदार्थ लग गये तब वह कहता है जैसे कि " किमिदम् " यह क्या है सो यह ज्ञान भी

पूर्णतया प्रकाश करने में अपनी असमर्थता सिद्ध करता है।

अतएव तीनों मिथ्या ज्ञानों के निराकरण के वास्ते ही 'सम्यग्' शब्द ज्ञान के साथ जोड़ा गया है अतएव निष्कर्ष यह निकला कि सम्यग् ज्ञान द्वारा ही पदार्थों का यथार्थ स्वरूप जाना जा सकता है।

जब पदार्थों का यथार्थ बोध हो गया तब फिर यह आत्मा सम्यग् चारित्र की ओर झुक कर आत्म विकास करने में लग जाता है। जिस प्रकार एक सुयोग्य वैद्य जब एक रोग की भली प्रकार परीक्षा द्वारा रोगों के कारण या रोग का पूर्णतया निश्चय कर लेता है तब फिर वह उसी रोग के योग्य औषध द्वारा शीघ्र उस रोग को शान्त कर देता है ठीक उसी प्रकार सच्चारित्र द्वारा आत्म प्रदेशों पर जो कर्म वर्गणाएं आत्म प्रदेशों के साथ सम्मिलित हो रही हैं उनकी शुद्धि कर आत्मा विकास करने लग जाता है।

अब विचार केवल इसी बात का रहा कि यदि स्वपक्ष गृहीत ज्ञान के निर्णय में समय लगाया जावे तब तो पक्षपात के कारण किसी प्रकार से भी एकता होने की सम्भावना नहीं की जा सकती।

प्रत्युत स्वपक्ष के कारण द्वेषाग्नि आगे से भी प्रचण्ड रूप धारण करने लग जाती है जिसके कारण फिर कृत्य और अकृत्य तथा उचित अनुचित क्रियाओं के करने का भी बोध नहीं रहता। अपितु व्यभिचार की मात्रा बढ़ जाती है कारण कि यावन्मात्र अकार्यों के करने वाले व्यक्ति हैं वे स्वपक्ष के आश्रित होकर मनमानी क्रियायें करने लग जाते हैं किन्तु अपने आप को फिर वे निर्दोष ही सिद्ध करते हैं। क्योंकि उनके पास एक स्वपक्ष रूप शस्त्र ही ऐसा होता है जिससे वे सबके समक्ष उसका प्रहार करने से चुकते नहीं हैं।

—

अतएव यावन्मात्र अकार्य हो रहे हैं उनमें अधिकांश धर्म के नाम पर विशेष अत्याचार होते दिखाई पड़ते हैं !

कथन करने का सारांश इतना ही है कि विद्या और चारित्र से ही आत्मा निज विकास कर सकता है परन्तु यावत्काल पर्यन्त परस्पर प्रेम और सहानुभूति न हो जावे तावत्काल पर्यन्त तात्त्विक पदार्थों का भली प्रकार से निर्णय भी नहीं हो सकता अतएव तात्त्विक पदार्थों के निर्णय के लिये सब से प्रथम चारित्र संगठन की अत्यन्त आवश्यकता है क्योंकि यह बात भली प्रकार से मानी हुई है कि जब तक आचरण ठीक नहीं होता तब तक ज्ञान की भी पूर्णतया सफलता नहीं हो सकती, अतएव आज कल भारतवर्ष के निवासी साधु वर्ग वा गृहस्थ वर्ग का चारित्र शोचनीय दशा को प्राप्त होता जा रहा है सो उसका मूलकारण यही प्रतीत होता है कि बहुत से लोगों ने अपनी शास्त्रीय शिक्षाओं से मुंह पराङ्मुख किया हुआ है।

इस बात का हमारे मन में चिरकाल से विचार था कि हिन्दु जनता के सामने हम ऐसे एक पुस्तकको उपस्थित करें जिस से उनके माने हुए स्मृति ग्रन्थोंसे उनको पवित्र जीवन का दिग्दर्शन कराया जासके क्योंकि परम पवित्र उभय लोक हितकारी जैनमतके उपदेशों के विद्यमान होने पर भी वे लोग शीघ्र कह बैठते हैं कि यह शिक्षाएँ तो जैनमतकी हैं अत एव हमें माननीय नहीं हैं।

यद्यपि यह कथन विचारशील व्यक्तियोंका नहीं है तथापि इस विषय के विवाद में न पड़ते हुए हमारा यही विचार निश्चित हुआ कि एक इस प्रकार का पुस्तक प्रकाशित किया जावे जिससे जैनेतर लोग भी अपने स्मृतिग्रन्थों के ही नाम से शुद्धाचरण की कोटि में प्रविष्ट हो जाएँ।

अकस्मात् हमें श्वेताम्बर स्थानकवासी जैन कान्फरंस के महोत्सव देखने का सौभाग्य प्राप्त हुआ, फिर वहां से कार्तिक मास में कान्फरंस के महोत्सव के पश्चात् पंजाबी साधुओं के दर्शनों के लिये उत्कण्ठा उत्पन्न हुई।

जब हम पंजाब देश के सुप्रसिद्ध लुधियाना नगर में पहुंचे तब वहां पर विराजमान शांतमुद्रा श्री संघ के परम हितैषी श्रीश्रीश्री १००८ गणावच्छेदक वा स्थविरपदविभूषित श्रीश्रीश्री स्वामी गणपतरायजी महाराज श्रीश्रीश्री १०८ स्वामी जयराम दास जी महाराज व श्रीश्रीश्री १०८ स्वामी शालिग्राम जीं महाराज व श्रीश्रीश्री १०८ श्री स्वामी उपाध्याय आत्मा-राम जी महाराज वा श्रीश्रीश्री १०८ स्वामी हेमचन्द्र जी महाराज इत्यादि मुनियों के दर्शन करने का सौभाग्य प्राप्त हुआ उस समय हमने अपने अन्तरङ्गभाव श्री उपाध्याय जी महाराजके समक्ष प्रगट किये।

श्री उपाध्याय जी महाराज ने फरमाया कि यद्यपि आपके विचार परमोत्कृष्ट और परमपवित्र हैं तथापि जैनेतर लोगों के स्मृतिकारों ने पूर्वापर विरोध कथन करने में कोई भी त्रुटि नहीं रखी जिस बात को प्रथम निषेध करने लगते हैं उसी बात का उसी स्थल में मण्डन कर देते हैं।

जैसे कि-मनुस्मृति के पांचवें अध्याय में किसी श्लोक में मांस भक्षण का निषेध और किसी श्लोक में मांस भक्षणकी विधि का विधान इत्यादि प्रायः सभी स्मृतियोंमें यह दशा देखी जाती है। तब हमने फिर विज्ञप्ति की कि जो श्लोक जैनमत की शिक्षाओं से सम्बन्ध रखते हैं यदि उन का ही संग्रह होजाए तब जनता को परम लाभ की संभावना की जा सकेगी।

प्रत्युत्तरमें श्री उपाध्याय जी महाराजने फरमाया कि-ऐसा हो सकता है किन्तु साथ यह भी कृपा की कि जिस प्रकार

स्मृतिकारों ने परस्पर विरुद्ध श्लोकों का निर्माण किया है ठीक उसी प्रकार उन ग्रन्थोंकी आधुनिक समयके भाषाटीका-कारों ने भी अपने पूर्वाचार्यों की शैली का उल्लंघन नहीं किया है अर्थात् अपनी ओर से कोई२ शब्द अधिक वा न्यून कर ही दिया है। जैसे कि-गौतम स्मृति के द्वितीय अध्याय में यह गद्य पाठ आता है कि-वर्ज्जयेन्मधुमांस गन्ध माल्यादि वा स्वप्नांज-न।भ्यंजनया नोपानच्छत्रकामक्रोधलोभमोहवाद्य वादन स्नान दन्तधावन हर्ष नृत्य गीत परिवाद भयानि, इसका अर्थ भाषा-टीका कारने यह लिखा है कि- ब्रह्मचारी मधु, मांस, गन्ध, फूलमाला, दिन में शयन, अंजन, उबटना, सवारी, जूता, छत्री, काम, क्रोध, लोभ, मोह, बाजा बजाना, अधिक स्नान, दन्तोन, हर्ष, नृत्य, गाना, निन्दा, मदिरा, और भय इन सब को त्यागदे, सो भाषाटीकाकारने स्नान शब्द की भाषा टीका करते समय अधिक शब्द अपने पास से जोड़ दिया है, सो इस प्रकार जनता को मूलग्रन्थकार के आशय से वंचित रखना विद्वानों के लिये उचित कार्य नहीं है, तदपि आनन्द का विषय इतना है कि भाषाकार ने मूलमें ही नित्य स्नान नहीं कर दिया, अस्तु। फिर हमने श्रीमहाराज से विज्ञप्ति की कि-उन्हीं स्मृति-कारोंके श्लोक वा उन्हीं के किये हुए अर्थों से युक्त एक पुस्तक की अत्यन्त आवश्यकता है। जिससे वे लोग अपने स्मृति-ग्रन्थों के व्याज (बहाने) से ही अपने जीवनको पवित्र बना सकें जिस से फिर वे सम्यग् ज्ञान के अधिकारी बन कर मोक्ष पथ के भी अधिकारी बन जाएँ।

इस पर फिर श्रीमहाराज ने कृपा की कि—

अष्टादश स्मृति भाषाटीका समेत पं० श्यामसुन्दरलाल त्रिपाठी कृतभाषानुवाद प्रकाशक-खेमराज श्रीकृष्णदास "श्री वेङ्कटेश्वरस्टीम" यन्त्रालय बंबई, से जो पुस्तक १६६५ शक

संवत् १८३० में प्रकाशित हुआ है और मनुस्मृति श्री पं० केशवप्रसाद शर्मा द्विवेदी विरचित भाषाटीका श्री खेमराज श्रीकृष्णदास ने (मुंबई से अपने श्रीवेङ्कटेश्वर स्टीम) यन्त्रालय से मुद्रित कर शके १८४७ संवत् १९८२ को प्रकाशित की है और याज्ञवल्क्यस्मृति (धर्मशास्त्र) श्री मन्महामहोपाध्याय पण्डितवर्य श्रीमेहरचन्द्र विरचिता भाषाटीका प्रकाशक—श्रीकृष्णदासात्मजगंगाविष्णु "श्रीवेंकटेश्वर" मुद्रणागारे सं० १९८० शकाब्दाः १८४५ कल्याण मुंबई इन स्मृतियोंमें जो जैनमत से प्रायः आचारविषय से सम्बन्ध रखनेवाले श्लोक हैं उन पर मैंने चिन्ह अंकित किये हुए हैं यदि आप उन श्लोकों की इच्छा रखते हैं तो यह श्लोक पृथक् पुस्तिका पर विन्यस्त किये जा सकते हैं।

: हमने इस बात को सहर्ष स्वीकार कर लिया—

परन्तु श्री उपाध्याय जी महाराज एक "जैनतत्त्व कलिका विकास" नामक पुस्तककी रचना कर रहे थे अत एव समय अधिक न मिलने के कारण उनकी आज्ञासे श्री मुनि अभयचन्द्र जी महाराज ने उक्त श्लोकों का संग्रह एक पुस्तिका पर लिख कर तय्यार कर दिया, जिस से हम श्री उपाध्याय जी महाराज के कृतज्ञ हैं।

श्रीसंघ के जैनेतर लोगों से सविनय नम्रता पूर्वक निवेदन करते हैं कि-आप लोग अपने पूर्वजोंकी शिक्षा पालन करते हुए वा धर्म वा देशोन्नति सदाचारद्वारा करते हुए निर्वाणाधिकारी बनें।

भवदीयकृपापात्र—

हीरालाल प्रतापचन्द जी नादेचा

खाचरोद (मालवा)

ओ३म् अर्हम् । ओ३म् नमः सिद्धेभ्यः

स्मृति श्लोक संग्रहः

अत्रिस्मृतिः १

एकमप्यक्षरं यस्तु गुरुः शिष्ये निवेदयेत् ॥
पृथिव्यां नास्ति तद्द्रव्यं यद्दत्वा ह्यनृणीभवेत् ॥९॥
एकाक्षरं प्रदातारं यो गुरुं नाभि मन्यते ॥
शुनां योनिशतं गत्वा चाण्डालेष्वभिजायते ॥१०॥

यदि गुरु ने शिष्य को एक अक्षर भी पढ़ाया है तथापि पृथ्वी में ऐसी कोई वस्तु नहीं है, जिसे अर्पण कर शिष्य ऋण से मुक्त हो सके ॥ ९ ॥

एक अक्षर के शिक्षा देने वाले गुरु का जो मनुष्य सन्मान नहीं करते वह सौ जन्म तक कुत्ते के जन्म को भोग कर अंत में चांडाल हो जन्म लेते हैं ॥१०॥

वेदं गृहीत्वायः कश्चिच्छास्त्रं चैवावमन्यते ॥
स सद्यः पशुतां याति संभवाने कविंशतिम् ॥११॥

जो मनुष्य वेद को पढ़ कर उस के गर्व से अन्यान्य शास्त्र के उपदेश को ग्रहण नहीं करता वह इक्कीस वार पशु की योनि में जन्म लेता है ॥११॥

स्वानि कर्माणि कुर्वाणा दूरे संतोपि मानवाः ॥
प्रिया भवंति लोकस्य स्वे स्वे कर्मण्युपस्थिताः ॥१२॥

जो मनुष्य अपने आचार के पालन में तत्पर हैं अर्थात् कभी कुमार्ग में पैर नहीं धरते वह दूर होने पर भी मनुष्यों की प्रीति के पात्र हैं ॥१२॥

कर्मविप्रस्य यजनं दानमध्ययनं तपः ॥
प्रतिग्रहोऽध्ययनं च याजनं चेति वृत्तयः ॥१३॥
क्षत्रियस्यापि यजनं दानमध्ययनं तपः ॥
शस्त्रोपजीवनं भूतरक्षणं चेति वृत्तयः ॥१४॥
दानमध्ययनं वार्ता यजनं चेति वै विशः ॥
शूद्रस्य वार्ता शुश्रूषा द्विजानां कारु कर्म च ॥१५॥
तदेतत्कर्माभिहितं संस्थिता यत्र वर्णिनः ॥
बहुमानमिह प्राप्य प्रयांति परमां गतिम् ॥१६॥

ब्राह्मणों के छः कार्य हैं उनमें यजन दान और अध्ययन यह तीन तपस्या हैं और दान लेना पढ़ाना यज्ञ कराना यह तीन जीविका हैं ॥१३॥

क्षत्रियों के पांच कार्य हैं उनमें यजन दान अध्ययन यह तीन तपस्या हैं और शस्त्र का व्यवहार और प्राणियों की रक्षा करना यह दो जीविका हैं ॥१४॥

वैश्य को भी यजन दान अध्ययन यह तीन तपस्या हैं और वार्ता अर्थात् खेती वाणिज्य गौओं की रक्षा और व्यवहार यह चार आजीविका हैं शूद्रों की ब्राह्मणों की सेवा करना यही तपस्या और शिल्प कार्य उनकी जीविका है ॥१५॥

मैंने यह धर्म कहा ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य और शूद्र यह चारों वर्ण इस धर्म के अनुसार चलने पर इस काल में बहुत सा सन्मान प्राप्त कर परलोक में श्रेष्ठ गति को पाते हैं ॥१६॥

सद्यः पतति मांसेन लाक्षया लवणेन च ॥
त्र्यहेण शूद्रो भवति ब्राह्मणः क्षीरविक्रयी ॥२१॥

ब्राह्मण मांस लाख और लवण के वेचने से तत्काल पतित होता है और दूध के वेचने से भी तीन दिन में शूद्र के समान हो जाता है ॥२१॥

दुष्टस्य दंडः सुजनस्यपूजा
न्यायेन कोशस्य च संप्रवृद्धिः ॥
अपक्षपातोऽर्थिषु राष्ट्र रक्षा
पंचैव यज्ञाः कथिता नृपाणाम् ॥२८॥

दुष्टों का दमन और श्रेष्ठों का पालन न्याय के अनुसार धन का संग्रह करना विचार के निमित्त आये हुए अर्थियों पर पक्षपात का न करना और सब प्रकार से राज्य की रक्षा करना यह पांच राजाओं के यज्ञ (अर्थात् तत्सदृश आवश्यक) कर्म हैं ॥२८॥

शौचमंगलानायासा अनसूयाऽस्पृहादमः ॥
लक्षणानि च विप्रस्य तथा दानं दयापि च ॥३३॥

शौच, मंगल, अनायास, अनसूया, अस्पृहा, दम, दान, और दया यह ब्राह्मणों के लक्षण हैं ॥३३॥

अभक्ष्यपरिहारश्च संसर्गश्चाप्यनिंदितैः ॥
आचारेषु व्यवस्थानं शौचमित्यभिधीयते ॥३४॥

प्रशस्ताचरणं नित्यमप्रशस्त विवर्जनम् ॥
एतद्धि मंगलं प्रोक्त मृषिभिर्धर्मवादिभिः ॥३५॥
शरीरं पीड्यते येन शुभेन ह्यशुभेन वा ॥
अत्यं तं तन्न कुर्वीत अनायासः स उच्यते ॥३६॥
नगुणान्गुणिनोहंति स्तौति चान्यान्गुणानपि ॥
नहसेच्चान्य दोषांश्च सानसूया प्रकीर्तिता ॥३७॥
यथोत्पन्नेन कर्तव्यः संतोषः सर्ववस्तुषु ॥
नस्पृहेत्परदारेषु साऽस्पृहा च प्रकीर्तिता ॥३८॥
वाह्य आध्यात्मिके वापि दुःख उत्पादिते परैः ॥
नकुप्यति न चाहंति दम इत्यभिधीयते ॥३९॥
अहन्यहनि दातव्यमदीने नांतरात्मना ॥
स्तोकादपि प्रयत्नेन दानमित्यभिधीयते ॥४०॥
परस्मिन्बंधुवर्गे वा मित्रे द्वेष्येरिपौ तथा ॥
आत्मवद्वर्तितव्यं हि दयैषा परिकीर्तिता ॥४१॥
यश्चैतैर्लक्षणैर्युक्तोगृहस्थोपिभवेद्द्विजः ॥
सगच्छति परं स्थानं जायते नेह वै पुनः ॥४२॥

अभक्ष्य वस्तु का त्याग, श्रेष्ठ का संसर्ग, और शास्त्र में कहे हुए अन्यान्य आचारों के पालन करने का नाम शौच है ॥ ३४ ॥

उत्तम कर्मों का आचरण और निन्दित कर्मों का त्याग करना इसी को धर्म के जानने वाले ऋषियों ने मंगल कहा है ॥ ३५ ॥

शुभ कार्य हो अथवा अशुभ कार्य हो जिस से शरीर को ग्लानि होती हो उसे अत्यन्त न करे उस का नाम अनायास है ॥ ३६ ॥

गुणवान् मनुष्यों के गुणों को नष्ट न करना और दूसरे के गुणों की प्रशंसा करना दूसरे के दोषों को देख कर उन का उपहास न करना इसी का नाम अनसूया है ॥३७॥

आवश्यकीय सम्पूर्ण वस्तुओं में से जो कुछ भी मिल जाय उसी से संतुष्ट रहना और पराई स्त्री की अभिलाषा न करना इसी का नाम अस्पृहा है ॥३८॥

कोई मनुष्य यदि वाह्य वा मानसिक दुःख उत्पन्न करे तो उस के ऊपर क्रोध वा उस की हिंसा न करने का नाम दम है ॥ ३६ ॥

किंञ्चित् प्राप्ति के होने पर भी उस में से थोड़ा २ प्रति दिन प्रसन्न मन से दूसरे को देना इस का नाम दान है ॥४०॥

दूसरे के प्रति, माता पिता आदि अपने कुटुम्बियों के प्रति, मित्रों के प्रति वैरकारी के प्रति और शत्रु के प्रति समान व्यवहार करना इसी का नाम दया है ॥४१॥

जो ब्राह्मण गृहस्थ हो कर भी इन सब लक्षणों से भूपित हैं वह उत्तम स्थान को प्राप्त करता है उस का फिर जन्म नहीं होता ॥४२॥

यमान्सेवेत सततं न नित्यं नियमान्बुधः ॥
यमान्पतत्यकुर्वाणो नियमान्केवलान्भजन् ॥४७॥

बुद्धिमान् मनुष्य सर्वदा यमों का सेवन करे, नियम का अनुष्ठान यथा समय में किया जाता है सर्वदा नहीं, और जो

यमों का त्याग कर केवल नियम ही करता है तो वह पतित होता है ॥ ४७ ॥

आनृशंस्यं क्षमा सत्यमहिंसा दानमार्जवम् ॥
प्रीतिः प्रसादो माधुर्यं मार्दवं च यमादश ॥४८॥
शौचमिज्या तपो दानं स्वाध्यायोपस्थ निग्रहः ॥
व्रतमौनोपवासं च स्नानं च नियमा दश ॥४९॥

अक्रूरता, क्षमा, सत्यवादिता, अहिंसा, दान, सरलता, प्रीति, प्रसन्नता, मधुरता और मृदुता इन दशों का नाम यम है ॥ ४८ ॥

शौच, यज्ञ का अनुष्ठान, तपस्या, अर्थात् वेद का पढ़ना, विधि रहित रति का त्याग, व्रत, मौन, उपवास और स्नान यह दश नियम हैं ॥४९॥

मद्यभांडे द्विजः कश्चिदज्ञानात्पिबते जलम् ॥
प्रायश्चित्तं कथं तस्यमुच्यते केन कर्मणा ॥६१॥
पालाशविल्व पत्राणि कुशान्पद्मान्युदुंबरम् ॥
क्वाथयित्वा पिबेदापस्त्रि रात्रेणैव शुद्ध्यति ॥६२॥

(प्रश्न) यदि कोई ब्राह्मण विना जाने हुए मदिरा के पात्र में जलपान करले तो उसका प्रायश्चित्त किस प्रकार होता है और उस मनुष्य की शुद्धि किस कर्म के अनुष्ठान करने से होती है ? ॥६१॥

(उत्तर) ढाक के पत्ते, वेल के पत्ते, कुश कमल के पत्ते, गूलर के पत्ते, इन सब का क्वाथ बना कर तीन दिन तक पान करे तब शुद्ध होता है ॥ ६२ ॥

सव्रतस्तु शुना दष्टस्त्रिरात्रमुपवासयेत् ॥
सघृतं यावाकं प्राश्य घृतशेषं समापयेत् ॥६८॥

यदि व्रती ब्राह्मण को कुत्ते ने काटा हो तो वह तीन दिन तक उपवास करे, और घृत सहित यावाक (आधा पका हुआ जौ वा कुलथी) का भोजन कर व्रत की समाप्ति करे ॥ ६८ ॥

मोहात्प्रमादात्संलोभाद्व्रतभंगं तु कारयेत् ॥
त्रिरात्रेणैव शुद्ध्येत पुनरेव व्रतीभवेत् ॥६९॥

मोह वा असावधानता से या लोभ के वश से जिस ने व्रत भंग कर दिया है वह तीन दिन तक उपवास करने से शुद्ध होता है और फिर व्रत को धारण करे ॥६९॥

अज्ञानात्प्राश्य विण्मूत्रं सुरा संस्पृष्टमेव वा ॥
पुनः संस्कारमर्हंति त्रयो वर्णा द्विजातयः ॥७४॥

जिस ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य ने विष्ठा, मूत्र वा सुरा जिस में मिली हो ऐसी कोई वस्तु अज्ञान (भूल) से खाई है, तो वह फिर संस्कार के (यज्ञोपवीत इत्यादि के योग्य है ॥ ७४ ॥

एकैकं वर्द्धयेन्नित्यं शुक्ले कृष्णे च ह्रासयेत् ॥
अमावस्यां न भुंजीत एष चांद्रायणो विधिः ॥११०॥

शुक्लपक्ष की प्रतिपदा को केवल एक ही ग्रास खाय, इस दिन से प्रारम्भ कर पूर्णिमा तक एक २ ग्रास को बढ़ाता जाय, अर्थात् पूर्णिमा तक तिथि की संख्या के अनुसार ग्रासों की संख्या होगी, और कृष्णपक्ष की प्रतिपदा से प्रति

दिन एक २ ग्रास को कम करे, और अमावस्या को उपवास करे, ऐसा करने से चान्द्रायण व्रत होता है, यह चान्द्रायण व्रत की विधि है ॥११०॥

एकैकं ग्रासमश्नीयात्त्र्यहाणि त्रीणि पूर्ववत् ॥
त्र्यहं परं च नाश्नीयादतिकृच्छ्रं तदुच्यते ॥
इत्येतत्कथितं पूर्वैर्महापातक नाशनम् ॥१११॥

पहले तीन दिन तक एक २ ग्रास का भोजन करे और अगले तीन दिन में सर्वथा भोजन न करे इसे अतिकृच्छ्र कहते हैं पहले आचार्यों ने इस व्रत को ही महापातकों का नाश करने वाला कहा है ॥१११॥

त्र्यहं सायं त्र्यहं प्रातस्त्र्यहं भुंक्ते त्वयाचितम् ॥
त्र्यहं परं च नाश्नीयात्प्राजापत्यो विधिः स्मृतः ११७
सायं तु द्वादश ग्रासाः प्रातः पंचदश स्मृताः ॥
अयाचितैश्चतुर्विंशं परैस्त्व नशनं स्मृतम् ॥११८॥
कुक्कुटांड प्रमाणं स्याद्यावद्वास्य विशेन्मुखे ॥
एतद्ग्रासं विजानीयाच्छुद्ध्यर्थं कायशोधनम् ॥११९॥

तीन दिन सायंकाल को और तीन दिन प्रातःकाल को और तीन दिन विना मांगे हुए जो मिल जाय ऐसे भोजन को करे इस के पीछे तीन दिन तक उपवास करे (इन बारह दिन में होने वाले व्रत को) प्राजापत्य कहते हैं ॥११७॥

इस व्रत में सायंकाल के समय बारह ग्रास और प्रातःकाल के समय पंद्रह ग्रास और विना मांगे हुए चौबीस ग्रास खाय इसके पीछे तीन दिन तक उपवास करे ॥११८॥

यह सभी को जानना उचित है कि इस प्रायश्चित्त के अंग से उत्पन्न हुए शरीर की शुद्धि करने वाले भोजन का ग्रास मुरग के अंडे की समान हो या जितना ग्रास उस के मुख में स्वच्छन्दता से जा सके उसके निमित्त वही ग्रास श्रेष्ठ है ॥ ११६ ॥

कृच्छ्रातिकृच्छ्रः पयसा दिवसानेक विंशतिम् ॥
द्वादशाहोपवासेन पराकः परिकीर्तितः ॥१२५॥

और इक्कीस दिन तक केवल दूध ही को पीकर रहे इस प्रकार से कृच्छ्रातिकृच्छ्र व्रत होता है और बारह दिन तक उपवास करे इस को पराक व्रत कहते हैं ॥१२५॥

तीर्थस्नानार्थिनी नारी पतिपादोदकं पिबेत् ॥
शंकरस्यापि विष्णोर्वा प्रयाति परमं पदम् ॥१३५॥

यदि स्त्री को तीर्थ के स्नान करने की इच्छा है तो वह अपने पति के चरणोदक का पान करे तब वह स्त्री शिव या विष्णु भगवान् के परम पद (कैलास वा वैकुण्ठ) को प्राप्त कर सकेगी ॥ १३५ ॥

सौवर्णाय सताम्रेपु कांस्य रौप्यमयेपु च ॥
भिक्षादातुर्न धर्मोस्ति भिक्षुर्भुंक्ते तु किल्विपम् ॥१५४॥
न च कांस्येपु भुंजीयादापद्यपि कदाचन ॥
मलाशाः सर्वएवैते यतयः कांस्य भोजनाः ॥१५५॥
कांस्यकस्य च यत्पात्रं गृहस्थस्य तथैव च ॥
कांस्यभोजी यतिश्चैव प्राप्नुयात्किल्विपं तयोः ॥१५६

यदि संन्यासी को सुवर्ण के पात्र लोहे के पात्र चांदी

अथवा कांसी के पात्र में जो भिक्षा दी जाती है उस का धर्म नहीं होता और उस से प्राप्त हुई भिक्षा को खाने वाला भिक्षु (संन्यासी) पाप का भोक्ता होता है ॥१५४॥

भिक्षुक कभी अधिक विपत्ति के आ जाने पर भी कांसी के पात्र में भोजन न करे कारण कि जो संन्यासी कांसी के पात्र में भोजन करते हैं उन्हें मल भक्षण का दोष कहा है॥१५५

कांसी के पात्र की जो अपवित्रता है और गृहस्थ में जो पाप है कांसी के पात्र में भोजन करने वाला भिक्षुक इन दोनों का पापों का अधिकारी होता है ॥१५६॥

चरेन्माधुकरीं वृत्तिमपि म्लेच्छकुलादपि ॥
एकान्नं नैव भोक्तव्यं वृहस्पति समोयदि ॥१५६॥

यती म्लेच्छ के गृह से भी भ्रमर (भौंरे) की वृत्ति का अवलम्बन करे (अर्थात् अनेक स्थानों से अन्न का संग्रह करे) परन्तु एक के स्थान का अन्न भक्षण न करे चाहे उस का देने वाला वृहस्पति के भी समान क्यों न हो ॥१५६॥

मद्यसंस्पृष्ट कुंभेषु यत्तोयं पिवति द्विजः ॥
कृच्छ्रपादेन शुद्ध्येत पुनः संस्कारमर्हति ॥२०१॥

जिस ब्राह्मण ने मदिरा से छुए घड़े का जल पिया हो तो वह कृच्छ्रपाद प्रायश्चित्त करके शुद्ध होता है और फिर वह संस्कार के योग्य है ॥२०१॥

गोदोहने चर्मपुटे च तोयं
यंत्राकरे कारुकशिल्पिहस्ते ॥
स्त्रीबालवृद्धा चरितानि यान्य
प्रत्यक्षदृष्टानि शुचीनि तानि ॥२२७॥

दोहिनी और मशक का जलयन्त्र (जलादि के निकालने की कल) आकर (खान) कारीगर और शिल्पी का हाथ स्त्री बालक और बुड्ढों के आचरण और जिन का अपवित्र पन प्रत्यक्ष में नहीं देखा गया है वह सब पवित्र हैं ॥२२७॥

अभिशस्तो द्विजोरण्ये ब्रह्महत्याव्रतं चरेत् ॥
मासोपवासं कुर्वीत चांद्रायणमथापिवा ॥२८७॥
वृथा मिथ्योपयोगेन भ्रूणहत्याव्रतं चरेत् ॥
अभक्षो द्वादशाहेन पराकेणव शुद्धयति ॥२८८॥

जो ब्राह्मण अभिशस्त (कलंकित) हो वन में जा कर ब्रह्महत्या का प्रायश्चित्त करे और एक महीने तक उपवास करे या चांद्रायण व्रत को करे ॥२८७॥

यदि झूठा ही दोष लगा हो तो भ्रूणहत्या का व्रत करे बारह दिन तक केवल जल ही को पीकर पराक व्रत का अनुष्ठान करे (तब शुद्ध होता है) ।२८८॥

अधीत्य चतुरो वेदान्सर्वशास्त्रार्थ तत्त्ववित् ॥
नरेन्द्र भवने भुक्त्वा विष्टायां जायते कृमिः ॥३०२॥

चारों वेदों का पढ़ने वाला सर्व शास्त्रों के मर्म को जानने वाला (ब्राह्मण) जो राजा के घर में जाकर भोजन करता है (तो वह राजा के यहां का अन्न खाने वाला) विष्ठा के कीड़े होकर जन्म लेता है ॥३०२॥

जन्म प्रभृति यत्पापं मातृकं पैतृकं तथा ॥
तत्सर्वं नश्यति क्षिप्रं वस्त्रदानान्न संशयः ॥३३१॥

जन्म से लेकर जितने पाप किये हैं वह और माता पिता

का जो अपराध किया है वह शीघ्र ही वस्त्र दान करने से निःसंदेह नष्ट हो जाते है ॥२३१॥

आतुरे प्राणदाता च त्रीणि दानफलानि च ॥
सर्वेषामेव दानानां विद्यादानं ततोधिकम् ॥२३६॥
पुत्रादिस्वजने दद्याद्विप्राय च न कैतवे ॥
सकामः स्वर्गमाप्नेति निष्कामो मोक्षमाप्नुयात् ॥२३७

दुःख की अवस्था में जो प्राण की रक्षा करता है उसको दान के तीन (धर्म, अर्थ और काम) फल प्राप्त होते हैं समस्त दान के बीच में विद्या का दान सब दानों से श्रेष्ठ है ॥२३६

पुत्रादि आत्मीय मनुष्य को और ब्राह्मण को विद्या का दान दे और कपटी मनुष्य को विद्या का दान न दे किसी मनोरथ से विद्या का दान करने वाला स्वर्ग को और निष्काम विद्या का दाता मोक्ष को प्राप्त होता है ॥२३७॥

आविकश्चित्रकारश्च वैद्यो नक्षत्र पाठकः ॥
चतुर्विप्रा न पूज्यंते बृहस्पति समायदि ॥३८४॥

भेड़ों को पालने वाला चित्रकार वैद्य और नक्षत्र पाठक (जो घर २ नक्षत्र तिथि बताता हुआ फिरता है) यह चार प्रकार के ब्राह्मण बृहस्पति के समान पंडित होने पर भी पूजनीय नहीं है ॥३८४॥

इति अत्रिस्मृतिः १

विष्णु स्मृतिः २

शौचमाश्रयसम्बन्धं यतिधर्मांश्च शिक्षयेत् ।
अहिंसा सत्यमस्तेयं ब्रह्मचर्यमफल्गुता ॥४॥
दयां च सर्वभूतेषु नित्यमेतद्यतिश्चरेत् ॥
ग्रामांते वृक्षमूले च नित्यकाल निकेतनः ॥५॥
पर्यटेत्कीटवद्भूमिं वर्षा स्वेकत्र संविशेत् ॥
वृद्धानामातुराणां च भीरूणां संगवर्जितः ॥६॥
ग्रामे वापि पुरे वापि वासो नैकत्र दुष्यति ॥
कौपीनाच्छादनं वासः कंथां शीतापहारिणीम् ॥७॥
पादुके चापि गृह्णीयात्कुर्यान्नान्यस्य संग्रहम् ॥
संभाषणं सह स्त्रीभिरालंभप्रेक्षणे तथा ॥८॥
नृत्यं गानं सभां सेवां परिवादांश्च वर्जयेत् ॥
वानप्रस्थ गृहस्थाभ्यां प्रीतिं यत्नेन वर्जयेत् ॥९॥
एकाकी विचरेन्नित्यं त्यक्त्वा सर्वपरिग्रहम् ॥
याचितायाचिताभ्यां तु भिक्षया कल्पयेत्स्थितिम् ॥१०

संन्यास आश्रम के धर्मों को सीखे शौच और संन्यासियों के धर्मों को सीखता रहे अहिंसा सत्य चोरी को छोड़ देना ब्रह्मचर्य अफल्गुता (निरर्थकपन का त्याग) ॥४॥

समस्त प्राणियों पर दया करना यति इतने कर्मों को

नित्य प्रति अवश्य करे ग्राम के निकट किसी वृक्ष के नीचे सदा अपना स्थान बना कर रात भर रहे ॥५॥

वर्षा ऋतु में एक स्थान पर बैठा रहे और कीड़े की समान पृथ्वी पर भ्रमण करे वृद्ध रोगी भयानक इनकी संगति न करे ॥ ६ ॥

वर्षा काल के समय ग्राम में अथवा नगर में जो यति एक स्थान में रहता है वह दूपित नहीं होता कोपीन (लंगोटी) ओढ़ने का वस्त्र जिस में कि शरदी न लगे ऐसी कंथा (गुदड़ी) ॥ ७ ॥

और खड़ाऊं इनको ग्रहण करे और इनसे इतर का संग्रह न करे स्त्रियों का स्पर्श और उन के साथ वार्तालाप तथा देखना ॥ ८ ॥

नाच गान सभा सेवा नौकरी निन्दा इनको छोड़ दे वानप्रस्थ और गृहस्थी इनका संग भी यत्न सहित त्याग दे ॥९॥

सम्पूर्ण परिग्रह त्याग कर केवल अकेला भ्रमण करे मांगे या बिना मांगे से ही जो मिल जाय उसी भिक्षा से अपना निर्वाह करे ॥ १० ॥

अन्नार्थं लिंगमुद्दिष्टं न मोक्षार्थ मिति स्थितिः ॥
त्यक्त्वा पुत्रादिकं सर्वं योग मार्गे व्यवस्थितः ॥१९॥

चिह्न अन्न के निमित्त कहा है मोक्ष के लिए नहीं कहा ऐसी मर्यादा है तीसरे इस में सम्पूर्ण पुत्रादिकों को त्याग और योग मार्ग में स्थित रह कर ॥१९॥

पात्रमस्य भवेत्पाणिस्तेन नित्यं गृहा नटेत् ॥
अतैजसानि पात्राणि भिक्षार्थं कृतवान्मनुः ॥२९॥

सर्वेषामेव भिक्षुणां दार्वलाबुमयानि च ॥
कांस्यपात्रे न भुंजीत आपद्यपि कथं चन ॥३०॥
मलाशाः सर्वे उच्यंते यतयः कांस्यभोजिनः ॥
कांसिकस्य तु यत्पापं गृहस्थस्य तथैव च ॥३१॥
कांस्यभोजीयतिः सर्वं तयोः प्राप्नोति किल्बिषम् ॥
ब्रह्मचारी गृहस्थश्च वानप्रस्थो यतिस्तथा ॥३२॥

भिक्षुक का पात्र हाथ ही है उसी से नित्य गृहों में विचरण करे अर्थात् भिक्षा मांगे और मनु जी ने भिक्षा के लिये विना धातु तुंवा आदि के पात्र रचे हैं ॥२६॥

सम्पूर्ण भिक्षुकों को काष्ट तांवी आदिकों के पात्र कहे हैं और विपत्ति के आ जाने पर भी कांसी के पात्र में भोजन न करे ॥ ३० ॥

जो यति कांसी के पात्र में भोजन करते हैं उन्हें विष्टा का खाने वाला कहा है कांसी के पात्र बनाने वाले को और उस में भोजन करने वाले गृहस्थ को जो पाप होता है ॥३१॥

उन दोनों का वह पाप कांसी के पात्र में भोजन करने वाले संन्यासी को मिलता है जो ब्रह्मचारी गृहस्थ वानप्रस्थ और संन्यासी ॥ ३२ ॥

उत्तमां वृत्तिमाश्रित्य पुनरावर्त्तयेद्यदि ॥
आरूढपतितो ज्ञेयः सर्वधर्म बहिष्कृतः ॥३३॥
निंद्यश्च सर्वदेवानां पितृणां च तथोच्यते ॥
त्रिदंडं लिंगमाश्रित्य जीवंति बहवोद्विजाः ॥३४॥

उत्तम आचरण को स्वीकार कर फिर उस का त्याग

करता है और उसे आरूढ पतित जानना और सब धर्मों से वहिष्कृत (वाह्य) है ॥३३॥

और वह सब देवता और पितरों में निंदित कहलाता है त्रिदंड (संन्यास) के आश्रय से वहुत से द्विज जीवन करते हैं ॥ ३४ ॥

इति विष्णुस्मृतिः २ अध्यायः ४

हारीत स्मृतिः ३

सायंप्रातश्चरेद्भैक्षं भोज्यार्थं संयतेन्द्रियः ॥
आचम्यप्रयतो नित्यं न कुर्याद्दंत धावनम् ॥७॥
छत्रं चोपानहं चैव गंधमाल्यादि वर्जयेत् ॥
नृत्यं गीतमथालापं मैथुनं च विवर्जयेत् ॥८॥
हस्त्यश्वारोहणं चैव संत्यजेत्संयतेन्द्रियः ॥
संध्योपास्तिं प्रकुर्वीत ब्रह्मचारी व्रतस्थितः ॥९॥
अभिवाद्य गुरोः पादौ संध्या कर्मावसानतः ॥
तथायोगं प्रकुर्वीत मातापित्रोश्च भक्तितः ॥१०॥

जितेन्द्रिय होकर भोजन की प्राप्ति के निमित्त प्रातःकाल और सन्ध्या के समय भिक्षा के निमित्त भ्रमण करे और नित्य सावधानी से आचमन करने पीछे दन्त धावन करे ॥७॥

छत्री जूता गंध माला नृत्य गाना निरर्थक वोलना और मैथुन इन को त्याग दे ॥ ८ ॥

जितेन्द्रिय हो ब्रह्मचारी हाथी और घोड़े पर न चढ़े और

व्रत में स्थित रहकर ब्रह्मचारी संध्योपासना करे ॥ ६ ॥

संध्या करने के उपरान्त गुरु के दोनों चरणों में नमस्कार कर पीछे भक्तिसहित पिता और माता की सेवा करे ॥१०॥

प्रतिपत्पर्वषष्ठीषु नवम्यां चैव सत्तमाः ॥
दन्तानां काष्ठसंयोगाद्दहत्या सप्तमं कुलम् ॥१०॥

हारीतस्मृतिः अध्याय ४

हे सन्तों में उत्तमो! पड़वा, अमावस्या, छठ और नवमी तिथि में जो दतौन करता है उस के सात कुल दग्ध हो जाते हैं ॥ १० ॥

सायंप्रातर्द्विजातीनामशनं श्रुतिचोदितम् ॥
नांतरा भोजनं कुर्यादग्निहोत्रसमो विधिः ॥६६॥

हारीतस्मृतिः अध्याय ४

सायं काल और प्रातः काल में भोजन करने की आज्ञा ब्राह्मणों को वेद ने दी है. इस बीच (दिन में दुबारा) भोजन नहीं करे, कारण कि यह भोजन विधि भी अग्निहोत्र के तुल्य है ॥ ६६ ॥

गृहस्थः पुत्रपौत्रादीन्दृष्ट्वा पलितमात्मनः ॥
भार्यां पुत्रेषु निःक्षिप्य सह वा प्रविशेद्वनम् ॥२॥

हारीतस्मृतिः अध्याय ५

गृहस्थी पुत्र पौत्रादि को और अपनी वृद्ध अवस्था को देखकर पुत्रों के ऊपर अपनी स्त्री को सौंप या उसे अपने संग लेकर वन को चला जाय ॥ २ ॥

एवं च कुर्वता येन कृतबुद्धिर्यथा क्रमम् ॥
अग्निं स्वात्मनि कृत्वा तु प्रव्रजेदुत्तरां दिशम् ॥८॥

आदेहपातं वनगो मौनमास्थाय तापसः ॥
स्मरन्नतींद्रिय ब्रह्मब्रह्मलोके महीयते ॥९॥

हारीतस्मृतिः अ० ५

जो क्रमानुसार इस प्रकार कर्मों के करने में समर्थ होता है वह धर्मात्मा अग्नि को अपने आत्मा में रख कर उत्तर दिशा में जाय ॥ ८ ॥

पीछे वन में जाकर शरीर छूटने तक मौन धारण कर जो तपस्वी अतींद्रिय (जिस को नेत्र आदि न जाने) ब्रह्म का स्मरण करता है वह ब्रह्मलोक में पूजित होता है ॥९॥

तपो हि यः सेवति वन्यवासः
समाधियुक्तः प्रयतांतरात्मा ॥
विमुक्तपापो विमलः प्रशांतः
सयाति दिव्यं पुरुषं पुराणम् ॥१०॥

हारीतस्मृतिः अ० ५

जो वानप्रस्थ वन में जाकर मन को वश में कर समाधि लगाये तप करता है वह पापों से रहित निर्मल और शांतरूप वानप्रस्थ सनातन दिव्य पुरुष को प्राप्त होता है ॥१०॥

योगाभ्यासबलेनैव नश्येयुः पातकानि तु ॥
तस्माद्योगपरोभूत्वाध्यायेन्नित्यं क्रियापरः ॥३॥

हारीतस्मृतिः अ० ७

योगाभ्यास के बल से ही सम्पूर्ण पाप नष्ट हो जाते हैं इस कारण योग में तत्पर हो कर मनुष्य उत्तम आचरण से नित्य ध्यान करे ॥३॥

प्राणायामेन वचनं प्रत्याहारेण चेंद्रियम् ॥

धारणाभिर्वशे कृत्वा पूर्वं दुर्धर्षणं मनः ॥४॥
एकाकारमनानं तं बुद्धौरूपमनामयम् ॥
सूक्ष्मात्सूक्ष्मतरं ध्यायेज्जगदाधारमच्युतम् ॥५॥
हारीतस्मृतिः अ० ७

प्रथम प्राणायाम से वाणी को प्रत्याहार (विषयों से इन्द्रियों को हटाने) स इन्द्रिय को और धारणा (स्थिरता के कर्म) से वश करने अयोग्य मन को वश में करके ॥४॥

एकाग्र चित्त होकर देवताओं को भी अगम्य (प्राप्ति के अयोग्य) और सूक्ष्म जो जगत् के आश्रय विष्णु भगवान् है उनका ध्यान करे ॥५॥

आत्मना वहिरंतःस्थं शुद्धचामीकरप्रभम् ॥
रहस्येकांतमासीनो ध्यायेदामरणांतिकम् ॥६॥
हारीतस्मृतिः अ० ७

जो ब्रह्म अपने स्वरूप से वाहर और भीतर स्थित है और शुद्ध सुवर्ण के समान जिस की कांति है ऐसे ब्रह्म का एकान्त में वैठ कर मरण समय तक ध्यान करे ॥६॥

यत्सर्वप्राणिहृदयं सर्वेषां च हृदि स्थितम् ॥
यच्चसर्वजनैर्ज्ञेयं सोऽहमस्मीति चिंतयेत् ॥७॥
हारीतस्मृतिः अ० ७

जो सम्पूर्ण प्राणियों का हृदय है जो सव के हृदय में विराजमान है और जो सव के जानने योग्य है वह परमात्मा मैं ही हूं ऐसा चिंतवन करे ॥७॥

आत्मलाभसुखं यावत्तपोध्यान मुदीरितम् ।
श्रुति स्मृत्यादिकं धर्मं तद्विरुद्धं न चाचरेत् ॥८॥
हारीतस्मृतिः अ० ७

जब तक आत्मा के लाभ का सुख न हो तब तक शास्त्रकारों ने तप, ध्यान, श्रुति और स्मृति का धर्म करना कहा है आत्मा की प्राप्ति का विरोधी जो है उसको न करे ॥ ८ ॥

यथा रथोऽश्वहीनस्तु यथाश्वो रथहीनकः ।
एवं तपश्च विद्या च संयुत भेषजं भवेत् ॥ ९ ॥
यथान्नं मधुसंयुक्तं मधु चान्नेन संयुतम् ।
उभाभ्यामपि पक्षाभ्यां यथा खे पक्षिणां गतिः ॥१०॥
तथैव ज्ञानकर्मभ्यां प्राप्यते ब्रह्म शाश्वतम् ।
विद्यातपोभ्यां संपन्नो ब्राह्मणो योगतत्परः ॥ ११ ॥
देहद्वयं विहायाशु मुक्तोभवति बंधनात् ।
न तथा क्षीणदेहस्य विनाशो विद्यते क्वचित् ॥१२॥

हारीतस्मृतिः अ० ७

जिस प्रकार से घोड़े के विना रथ और सारथी के विना घोड़ा नहीं चलता और दोनों ही परस्पर में सहायक हैं इसी प्रकार विद्या भी तपस्या के विना साथ हुए कुछ काम नहीं कर सकती। विद्या (ज्ञान) तप यह दोनों मिलकर संसार के रोग की औषधी हैं ॥९॥ जिस भांति मीठे से युक्त अन्न और अन्न से युक्त मीठा और जैसे दोनों पंखों से ही आकाश में पक्षियों की गति (उड़ान) है ॥१०॥ उसी भांति ज्ञान और कर्म इन दोनों से ही सनातन ब्रह्म की प्राप्ति होती है ज्ञान और तप से युक्त और योग में तत्पर हुआ ब्राह्मण ॥ ११ ॥ दोनों देहों (स्थूल और सूक्ष्म) को शीघ्र छोड़कर बंधन से छूट जाता है इसी भांति जिसका देह नष्ट हो गया है उसका नाश कभी नहीं होता ॥ १२ ॥

शूद्रान्नेन तु भुक्तेन यो द्विजो जनयेत्सुतान् ।
यस्यान्नं तस्य ते पुत्रा अन्नाच्छुक्रं प्रवर्तते ॥५२॥
आंगिरसस्मृतिः ।

जो ब्राह्मण शूद्र के अन्न को खाकर पुत्र उत्पन्न करता है वह पुत्र उसी के हैं जिसका वह अन्न था कारण कि अन्न से ही वीर्य्य की उत्पत्ति है ॥ ५२ ॥

भर्तुः शरीर शुश्रूषां दौरात्म्याद प्रकुर्वती ।
दंड्या द्वादशकं नारी वर्षं त्याज्या धनं विना ॥१८॥
यमस्मृतिः ।

दुष्ट भाव से जो स्त्री अपने पति के शरीर की सेवा नहीं करे उस स्त्री को बारह वर्ष तक दंड करे अर्थात् उस के साथ बारह वर्ष तक व्यवहार नहीं करे और उस के पास धन अलंकार कुछ भी नहीं रक्खे ॥ १८ ॥

मातरं गुरुपत्नीं च स्वसृर्दुहितरं स्नुषाम् ।
गत्वैताः प्रविशेदग्निं नान्या शुद्धि विंधीयते ॥३५॥
यमस्मृतिः ।

जो मनुष्य माता, गुरु की स्त्री, भगिनी, लड़की, पुत्रवधू इन में गमन करता है वह अग्नि में प्रवेश करने से (मरजाने से) शुद्ध होता है और किसी भांति उसकी शुद्धि नहीं है ॥ ३५ ॥

वेश्याभिगमनेपापं व्यपोहन्ति द्विजातयः ।
पीत्वा सकृत्सुतप्तं च पंच रात्रं कुशोदकम् ॥३८॥
गुरुतल्पव्रतं केचित्केचिद्ब्रह्महणो व्रतम् ।
गोघ्नस्य केचिदिच्छन्ति केचिच्चैवावकीर्णिनः ॥३९॥
यमस्मृतिः ।

जिसने वेश्या के साथ गमन किया है उस पाप को तीनों द्विजाति अत्यन्त तपे हुए कुशा के जल को पांच रात्रि तक प्रतिदिन एक वार पीकर दूर कर सकते हैं ॥३८॥ कोई ऋषी गुरु की शय्या में गमन करने के व्रत की कोई ब्रह्महत्या के व्रत की कोई गोहत्या के प्रायश्चित की और कोई अवकीर्णी (अर्थात् ब्रह्मचर्य से पतित हो उस) के प्रायश्चित करने की आज्ञा देते हैं अर्थात् वेश्या गामी पुरुष इन में से कोई प्रायश्चित करने से शुद्ध हो सकता है ॥ ३६ ॥

मूर्छितः पतितो वापि दंडेनाभिहतस्तथा ।
उत्थाय षट्पदं गच्छेत्सप्त पंच दशापि वा ॥४६॥
ग्रासं वा यदि गृह्णीयात्तोयं वापि पिबेद्यदि ।
पूर्व व्याधिप्रनष्टानां प्रायश्चित्तं न विद्यते ॥ ४७ ॥

यमस्मृतिः ।

यदि दंड के आघात लगने से जिस गौ को मूर्छा आ गई हो या गिर पड़ी हो और फिर वह गौ या वैल उठकर छः सात पांच अथवा दश कदम चल दे और घास आदिक खाकर जल पीने पीछे मर जाय तो पूर्व व्याधि से मरे हुए उस वैल या गौ का प्रायश्चित मनुष्य को नहीं कहा है ॥४६॥४७॥

वत्सानां कंठ बंधे च क्रियया भेषजेन तु ।
सायं संगोपनार्थं च न दोषो रोध बंधयोः ॥ ५२ ॥

यमस्मृतिः ।

यदि बछड़े का गला बांधने से या औषधी के देने से अथवा रक्षा के लिये सन्ध्या को रोकते और बांधते समय में मर जाय तो बांधने वाला पाप का भागी नहीं है ॥ ५२ ॥

हलमष्टगवं धर्म्यं षड्गवं जीवितार्थिनाम् ।

चतुर्गवं नृशंसानां द्विगवं हि जिघांसिनाम् ॥ २२ ॥

आपस्तम्बस्मृतिः अ० १

आठ बैलों का हल जो चलाते हैं वह धर्मात्मा हैं और जो छः बैलों का हल चलाते हैं वह अपनी जीविका के लिये करते हैं चार बैलों का हल कठोरों के लिये है और जो दो बैलों का हल चलाते हैं वह हत्यारे हैं ॥ २२ ॥

अन्यैस्तु खानिताः कूपास्तडागानि तथैव च ।
एषु स्नात्वा च पीत्वा च पंचगव्येन शुद्ध्यति ॥५॥

आपस्तम्बस्मृतिः अ० २ ।

दूसरों के बनवाये हुए कूप अथवा तालावादि के जल में स्नान करने से पंचगव्य के पीने से शुद्ध होता है ॥ ५ ॥

ब्राह्मण्या सह योऽश्नीयादुच्छिष्टं वा कदाचन ।
न तत्र दोषं मन्यन्ते नित्यमेव मनीषिणः ॥ ७ ॥

आपस्तम्बस्मृतिः अ० ५ ।

ब्राह्मण कदाचित् अपनी ब्राह्मणी के साथ भोजन करले तो विद्वान् मनुष्य उस में दोष नहीं मानते ॥ ७ ॥

भुंजते ये तु शूद्रान्नं मासमेकं निरन्तरम् ।
इह जन्मनि शूद्रत्वं जायन्ते ते मृताः शुनि ॥६॥
शूद्रान्नं शूद्रसम्पर्कः शूद्रेणैव सहासनम् ।
शूद्राज्ज्ञानागमः कश्चिज्ज्वलंतमपिपातयेत् ॥७॥
आहिताग्निस्तु यो विप्रः शूद्रान्नान्न निवर्तते ।
तथा तस्य प्रणश्यंति आत्मा ब्रह्मत्रयोऽग्नयः ॥ ८ ॥
शूद्रान्नेन तु भुक्तेन मैथुनं योधिगच्छति ।

यस्यान्नं तस्य ते पुत्रा अन्नाच्छुक्रस्य सम्भवः ॥९॥
शूद्रान्नेनो दरस्थेन यः कश्चिन्म्रियते द्विजः ।
स भवेच्छूकरो ग्राम्यस्तस्य वा जायते कुले ॥१०॥
आपस्तम्बस्मृतिः अ० ८ ।

जो ब्राह्मण एक महीने तक बराबर शूद्र के यहांके अन्नको खाते हैं वह इस जन्म में ही शूद्र हो जाते हैं और मरने के पीछे उनको कुत्ते की योनि मिलती है ॥६॥ शूद्र के यहां का अन्न भोजन शूद्र के साथ एक आसन पर बैठना शूद्र से विद्या पढ़ना, यह सम्पूर्ण कार्य तेजस्वी पुरुष को भी पतित करते हैं ॥ ७ ॥ जो ब्राह्मण नित्य होम के लिये अग्नि स्थापन करता है वह यदि शूद्र के यहां अन्न भोजन करना न छोड़े तो उस की आत्मा वेद और तीनों अग्नि नष्ट हो जाती हैं।

शूद्र के अन्नको भोजन कर जो स्त्री संग कर उसमें पुत्रादि उत्पन्न करता है वह पुत्र शूद्र के हैं कारण कि अन्न से ही शुक्र उत्पन्न होता है ॥ ९ ॥

शूद्र का अन्न पेट में रहते हुए जो ब्राह्मण मरजाता है वह उस जन्म में गांव का सूकर होता है अथवा शूद्र के ही कुल में उत्पन्न होता है ॥ १० ॥

अल्पेनापि हि शुल्केन पिता कन्यां ददाति यः ।
रौरवे बहुवर्षाणि पुरीषं मूत्रमश्नुते ॥ २५ ॥
आपस्तम्बस्मृतिः अ० ९ ।

जो पिता कुछ भी धन लेकर कन्या का दान करता है वह मनुष्य बहुत बर्षों तक रौरव नरकमें निवास करके विष्ठा मूत्र को खाता रहता है ॥ २५ ॥

न यमं यममित्याहुरात्मा वै यम उच्यते ।
आत्मा संयमितो येन तं यमः किं करिष्यति ॥ ३ ॥

आपस्तम्बस्मृतिः अ० १० ।

यमराजको यम कहकर नहीं पुकारते परन्तु अपनी आत्मा को ही यम कहते हैं जिस मनुष्य ने मन को अपने वश में कर लिया है यमराज उसका क्या कर सकता है ॥ ३ ॥

न चैवासिस्तथा तीक्ष्णः सर्पो वा दुरधिष्ठितः ।
यथा क्रोधो हि जन्तूनां शरीरस्थो विनाशकः ॥ ४ ॥

आपस्तम्बस्मृतिः अ० १० ।

खड्ग भी ऐसा तीक्ष्ण नहीं है और सर्प भी ऐसा भयङ्कर नहीं है जैसा कि प्राणियों के शरीर में क्रोध उनका नाश करने वाला है (इस कारण सब भान्ति से क्रोध को त्याग दे) ॥ ४ ॥

क्षमा गुणो हि जंतूनामिहामुत्र सुखप्रदः ।
क्षमावतां दोषो द्वितीयो नोपपद्यते
यदेनं क्षमयायुक्तमशक्तं मन्यते जनः ५

आपस्तम्बस्मृतिः अ० १० ।

मनुष्यों में क्षमा ही एक गुण है वह इस लोक और परलोक में सुख की देने वाली है क्षमावान् मनुष्यों में एक दोष के अतिरिक्त दूसरा दिखाई नहीं देता (वह दोष क्या है उसे कहते हैं) क्षमा शील मनुष्य को मूर्खजन असमर्थ विचारते हैं ॥ ५ ॥

न शब्दशास्त्राभिरतस्य मोक्षो न चैव रम्यावसथप्रियस्य ।
न भोजनाच्छादनतत्परस्य न लोकचित्तग्रहणे रतस्य ॥६॥

एकान्तशीलस्य दृढव्रतस्य मोक्षो भवेत्प्रीतिनिवर्तकस्य।
अध्यात्मयोगैकरतस्य सम्यङ्मोक्षो भवेन्नित्यमहिंसकस्य ॥७॥

आपस्तम्बस्मृतिः अ० १०।

व्याकरण शास्त्र में जिस का मन लवलीन हो जाय उसकी और जिस का प्यारा रमणीक घर है उसकी और भोजन वस्त्र में तत्पर हैं उनकी और जो संसार के मन को वश करने में रत हैं उनकी मोक्ष नहीं होती ॥ ६ ॥

परन्तु जो एकान्तमें निवास करे और दृढ व्रतसे रहे और सब की प्रीति से दूर रहे जो दूसरे की हिंसा न करे और जो अध्यात्म योग में तत्पर रहे ऐसे मनुष्य की मोक्ष हो जाती है ॥ ७ ॥

क्रोधयुक्तो यद्यजते यज्जुहोति यदर्चति।
सर्वं हरति तत्तस्य आमकुम्भ इवोदकम् ॥ ८॥

आपस्तम्बस्मृतिः अ० १०।

क्रोधी मनुष्य जो यज्ञ करता है होम करता है जो पूजा करता है वह कच्चे घड़े की समान नष्ट हो जाता है अर्थात् जैसे कच्चे घड़े में जल नहीं ठहरता ॥ ८ ॥

मातृवत्परदारांश्च परद्रव्याणि लोष्टवत्।
आत्मवत्सर्वभूतानि यः पश्यति स पश्यति ॥ ११ ॥

आपस्तम्बस्मृतिः अ० १०।

जो मनुष्य माता की समान पराई स्त्री को देखता है और पराये द्रव्य को लोष्ट (ढेले) की समान देखता है और जो सम्पूर्ण प्राणियों को अपने समान देखता है वह मनुष्य ही यथार्थ देखने वाला है ज्ञानवान् है ॥ ११ ॥

उपनीतो द्विजो नित्यं गुरवे हितमाचरेत्।

स्रग्गन्धमधुमांसानि ब्रह्मचारी विवर्जयेत् ॥ ५ ॥

संवर्त्तस्मृतिः ।

यज्ञोपवीत हो जाने पर ब्राह्मण प्रतिदिन गुरुदेव का हित-कारी कार्य करे ब्रह्मचारी माला गन्ध मद्य मांस इन का त्याग करदे ॥ ५ ॥

सायं प्रातस्तु भिक्षेत ब्रह्मचारी सदा व्रती ।
निवेद्य गुरवेऽश्नीयात्प्राङ्मुखो वाग्यतः शुचिः ॥११॥

संवर्त्तस्मृतिः ।

ब्रह्मचारी नियम अवलम्बनपूर्वक प्रातःकाल और सायं-काल में भिक्षा मांगे इसके उपरांत उस भिक्षा को गुरुदेवको निवेदन कर पूर्वमुख हो मौन को धारण कर पवित्र भाव से भोजन करे ॥ ११ ॥

सायं प्रातर्द्विजातीनामशनं श्रुतिनोदितम् ।
नांतरा भोजनं कुर्यादग्निहोत्री समाहितः ॥ १२ ॥

संवर्त्तस्मृतिः ।

ब्राह्मणों को सायंकाल और प्रातःकाल दिन में दो समय भोजन करना वेद ने कहा है इस में सावधान मनुष्य बीच में भोजन नहीं करे ॥ १२ ॥

ब्रह्मचारी तु यः स्कन्देत्कामतः शुक्रमात्मनः ।
अवकीर्णिव्रतं कुर्यात्स्नात्वा शुद्ध्येदकामतः ॥ २७ ॥

संवर्त्तस्मृतिः ।

जो ब्रह्मचारी जानकर अपने वीर्यको निकाले तो अवकीर्णि नामक (ब्रह्मचर्य व्रत नष्ट हो जाने पर के) प्रायश्चित्त से शुद्ध होता है और यदि अज्ञान (स्वप्नादिक) से वीर्य निकल जाय तो स्नान करने से उसकी शुद्धि होती है ॥ २७ ॥

वस्त्रदाता सुवेषः स्याद्रूप्यदो रूपमेव च ।
हिरण्यदः समृद्धिं च तेजश्चायुश्च विंदति ॥ ५२ ॥
संवर्त्तस्मृतिः ।

जो मनुष्य वस्त्र दान करता है वह सुन्दर वस्त्रोंसे शोभायमान होता है चान्दी का देने वाला मनुष्य रूपवान् होता है सुवर्ण के देनेवाले की वड़ी आयु होती है और धन की वृद्धि होती है ॥ ५२ ॥

भूताभयप्रदानेन सर्वान्कामानवाप्नुयात् ।
दीर्घमायुश्च लभते सुखी चैव सदा भवेत् ॥ ५३ ॥
संवर्त्तस्मृतिः ।

प्राणियों को अभयदान देने से सम्पूर्ण मनोरथ सिद्ध होते हैं अथवा दीर्घायु और सुखी होता है ॥ ५३ ॥

औषधं स्नेहमाहारं रोगिणं रोग शान्तये ।
दत्त्वा स्याद्रोगरहितः सुखी दीर्घायुरेव च ॥ ५६ ॥
संवर्त्तस्मृतिः ।

जो मनुष्य रोगियों के रोग को दूर करने के लिये औषधी स्नेह (घृत) इन को मिलाकर भोजन देता है वह रोग रहित होकर सुखी और चिरंजीवी होता है ॥ ५६ ॥

अन्नदस्तु भवेन्नित्यं सुतृप्तो निभृतः सदा ।
अंवुदश्च सुखी नित्यं सर्व कर्म समन्वितः ॥ ८० ॥
सर्वेषामेव दानानामन्नदानं परं स्मृतम् ।
सर्वेषामेव जन्तूनां यतस्तज्जीवितं परम् ॥ ८१ ॥
यस्मादन्नात्प्रजाः सर्वाः कल्पे कल्पेऽसृजत्प्रभुः ।

तस्मादन्नात्परं दानं विद्यते न हि किंचन ।
अन्नाद्भूतानि जायन्ते जीवंति च न संशयः ॥८२॥
संवर्त्तस्मृतिः ।

जो मनुष्य अन्न दान करता है वह नित्य पुष्ट और तृप्त रहता है जल का दान करने वाला सुखी और सम्पूर्ण कर्मों से युक्त रहता है ॥ ८० ॥ सम्पूर्ण दानों में अन्न का दान ही श्रेष्ठ है कारण कि सब प्राणियों का जीवन अन्न से ही है ॥८१॥ इसी कारण से ब्रह्मा जी ने कल्प २ में सम्पूर्ण प्रजा अन्न से ही रची है इस से उत्तम और कोई दान नहीं है कारण कि अन्न से ही प्राणियों की उत्पत्ति है और अन्न से ही उनका जीवन है इस में किंचित् भी सन्देह नहीं ॥ ८२ ॥

औषधं पथ्यमाहारं स्नेहाभ्यंगं प्रतिश्रयम् ।
यः प्रयच्छति रोगिभ्यः स भवेद्व्याधिवर्जितः ॥८६॥
संवर्त्तस्मृतिः ।

जो मनुष्य रोगियों को औषधी पथ्य भोजन तेल का उबटन रहने के लिये स्थान देता है वह रोगरहित रहता है अर्थात् उसे कभी कोई रोग नहीं होता ॥ ८६ ॥

दानैश्च विविधैः सम्यक्फलमेतदुदाहृतम् ।
विद्यादानेन सुमतिर्ब्रह्मलोके महीयते ॥ ८८ ॥
संवर्त्तस्मृतिः ।

यह अनेक प्रकार के दानों का फल कहा जो मनुष्य विद्या का दान करता है वह श्रेष्ठ बुद्धिवाला पुरुष ब्रह्मलोक में पूजनीय होता है ॥ ८८ ॥

चत्वार्येतानि कर्माणि संध्यायां वर्जयेद्बुधः ।

आहारं मैथुनं निद्रां तथा संपाठमेव च ॥ ६७ ॥

संवर्त्तस्मृतिः ।

ज्ञानी मनुष्य सन्ध्या के समय में इन चार कामों को न करे भोजन, मैथुन, शयन और पढ़ना ॥ ६७ ॥

आहाराज्जायते व्याधिर्गर्भो वै रौद्र मैथुनात् ।
निद्रातो जायतेऽलक्ष्मीः संपाठादायुषः क्षयः ॥६८॥

संवर्त्तस्मृतिः ।

भोजन करने से रोग उत्पन्न होता है मैथुन से भयंकर गर्भ रहता है शयन करने से दरिद्रता आती है और पढ़ने से अवस्था का नाश हो जाता है ॥ ६८ ॥

मृत्युं च नाभिनंदेत जीवितं वा कथंचन ।
कालमेव प्रतीक्षेत यावदायुः समाप्यते ॥ १०६ ॥

संवर्त्तस्मृतिः ।

मरने और जीने की प्रशंसा कभी न करे इस भांति से इतनी अवस्था समाप्त हो जाय इस कारण समय की प्रतीक्षा करता रहे ॥ १०६ ॥

ब्रह्मघ्नश्च सुरापश्च स्तेयी च गुरुतल्पगः ।
महापातकिनस्त्वेते तत्संयोगी च पंचमः ॥११२॥

संवर्त्तस्मृतिः ।

ब्रह्महत्या करनेवाला मदिरा पीनेवाला चोर, गुरु की शय्या (स्त्री) में गमन करने वाला यह चारों महापातकी होते हैं और जो इनका संगी है वह भी महापातकी होता है ॥ ११२ ॥

हस्तिनं तुरगं हत्वा महिषोष्ट्रकपींस्तथा ।

एषां वधे द्विजः कुर्यात्सप्तरात्रमभोजनम् ॥१४३॥

संवर्त्तस्मृतिः।

जो ब्राह्मण हाथी, घोड़ा, भैंस, ऊँट और वानर इनको मारता है वह सात दिन तक भोजन न करे तब उसकी शुद्धि होती है ॥ १४३ ॥

हंसं काकं बलाकां च बर्हिकारंडवावपि।
सारसं चापभासौ च हत्वा त्रिदिवसं क्षिपेत् ॥१४६॥
चक्रवाकं तथा क्रौंचं सारिकाशुकतित्तिरीन्।
श्येनगृध्रानुलूकांश्च पारावतमथापि वा ॥१४७॥
टिट्टिभं जालपादं च कोकिलं कुक्कुटं तथा।
एषां वधे नरः कुर्यादेक रात्रमभोजनम् ॥१४८॥
पूर्वोक्तानां तु सर्वेषां हंसादीनामशेषतः।
अहोरात्रोषित स्तिष्ठेज्जपन्वै जातवेदसम् ॥१४९॥

संवर्त्तस्मृतिः।

जो मनुष्य हंस, कौआ, मोर, कारंडव, सारस, चाप भास इनको मारता है वह तीन दिन तक उपवास करने से शुद्ध होता है ॥ १४६ ॥ जो मनुष्य चकवा, कूंज, मैना, तोता, तीतर शिखरा, गीध, उल्लू, कबूतर ॥ १४७ ॥ टटीरी, जालपाद (हंसभेद) कोयल मुरगा इनको मारता है वह मनुष्य एक रात्रि उपवास करने से शुद्ध होता है ॥ १४८ ॥ पूर्वोक्त कहे हुए सम्पूर्ण जीव और विशेष करके हंस आदि के मारने वाला अहोरात्र उपवास कर जातवेद से मन्त्र का जप करता हुआ स्थित रहे ॥ १४९ ॥

मंडूकं चैव हत्वा च सर्पमार्जार मूषकान्।

त्रिरात्रो पोषित स्तिष्ठेत्कुर्याद्ब्राह्मणभोजनम् ॥१५०॥

जो मनुष्य मंडूक, सांप, बिलाव, मूसा इनको मारता है वह तीन उपवास कर ब्राह्मण भोजन कराने से शुद्ध होता है।

पतिमुल्लंघ्य मोहात्स्त्री किं किं न नरकं व्रजेत् ।

कृच्छ्रान्मनुष्यतां प्राप्य किं किं दुःखं न विन्दति ॥११

कात्यायनस्मृतिः खंड १६।

स्त्री अज्ञानता से पति का उल्लंघन करके किस २ नरक में नहीं जाती इसके पीछे बड़े कष्टों को पाकर मनुष्य योनि मिलती है उस में वह किस २ दुःख को नहीं भोगती ॥११॥

पतिशुश्रूषयैव स्त्री कान्न लोकान्समश्नुते ।

दिवः पुनरिहायाता सुखानामम्बुधिर्भवेत् ॥१२॥

का० खंड १६।

स्त्री केवल पति की शुश्रूषा करके ही सम्पूर्ण स्वर्ग के सुखों को भोगती है और स्वर्ग से पुनर्वार भूलोक में आकर सुखों का समुद्र हो जाती है ॥ १२ ॥

मान्या चेन्म्रियते पूर्वभार्या पतिविमानिता ।

त्रीणि जन्मानि सा पुंस्त्वं पुरुषः स्त्रीत्वमर्हति ॥१३॥

का० खंड २० ।

यदि निर्दोष माननीया स्त्री स्वामी से अपमानित हो मर जाय तो यह स्त्री तीन जन्म तक पुरुष होती है और वह पुरुष स्त्री होता है ॥ १३ ॥

मा शोकं कुरुतानित्ये सर्वस्मिन्प्राणधर्मिणि ।

धर्म्मं कुरुत यत्नेन यो वः सह गमिष्यति ॥ ४ ॥

मानुष्ये कदली स्तम्भे निःसारे सारमार्गणम् ।

यः करोति स संमूढो जलबुद्बुदसंनिभे ॥५॥
गंत्री वसुमती नाशमुदधिर्दैवतानि च ।
केन प्रत्ययः कथं नाशं मर्त्य लोको न यास्यति ॥६॥
पंचधा संभृतः कायो यदि पंचत्वमागतः ।
कर्मभिः स्वशरीरोत्थैस्तत्र का परिदेवना ॥ ७ ॥
सर्वेक्षयांता निचयाः पतनांताः समुच्छ्रयाः ।
संयोगा विप्रयोगान्ता मरणांतं हि जीवितम् ॥८॥
श्लेष्माश्रु बांधवैर्मुक्तं प्रेतो भुंक्ते यतोऽवशः ।
अतो न रोदितव्यं हि क्रियाः कार्य्याः प्रयत्नतः ॥९॥

कात्यायनस्मृतिः खंड २२ ।

अर्थ—सम्पूर्ण प्राणी अनित्य हैं, इस कारण तुम शोक मत करो, यत्न पूर्वक धर्म कार्य करो, यह धर्म ही तुम्हारे साथ चलेगा ॥ ४ ॥ केले की पिण्डी के समान असार और जल के बुलबुले के समान मनुष्य-लोक में जो मनुष्य सार ढूंढता है वह अत्यन्त मूर्ख है ॥ ५ ॥ पृथ्वी, समुद्र, देवता सभी का नाश है तो इस मृत्यु-लोक में किसका नाश न होगा ? ॥६॥ पांच भूतों से बना हुआ यह देह यदि देह-धारण-जनित कर्मों के फल में पंचत्व को प्राप्त होजाय, तो इसमें शोक क्या है ॥ ७ ॥ सम्पूर्ण सञ्चयों का अन्त में क्षय है, उन्नति का शेष पतन है, संयोग का शेष वियोग है, और जीवन का शेष मरण है ॥ ८ ॥ जो बन्धु बान्धव रुदन के समय नेत्रोंसे आंसू डालते हैं प्रेत अवश होकर उनका भोजन करता है इस कारण रुदन करना उचित नहीं वरन यत्नपूर्वक कर्म करना कर्तव्य है ॥ ९ ॥

लवणं मधुमांसं च सारांशो येन हूयते ।
उपवासेन भुञ्जीत नोरु रात्रौ न किंचन ॥ ६ ॥

अर्थ—लवण सहित मांस सारका भाग इनका जो हवन करता है वह दिन में उपवास करे और रात्रि में अधिक न खाय ॥ ६ ॥

गौर्विशिष्टतमा विप्रैर्वेदेष्वपि निगद्यते ॥
न ततोऽन्यद्वरं यस्मात्तस्माद्गौर्वर उच्यते ॥ १४ ॥
येषां व्रतानामन्तेषु दक्षिणा न विधीयते ।
वरस्तत्र भवेद्दानमपि वाऽऽच्छादयेद्गुरुम् ॥ १५ ॥

कात्यायन स्मृतिः-सप्तविंशः खण्डः

अर्थ—ब्राह्मणों ने गौ को वेदों में भी उत्तम कहा है इसी कारण गौ से श्रेष्ठ और कोई नहीं है इसी से गौ को वर कहते हैं ॥ १४ ॥ जिन व्रतोंके अन्त में दक्षिणा नहीं कही है वहां वर (गौ) दक्षिणा दे अथवा गुरु को वस्त्रों से ढक दे ॥ १५ ॥

अन्नदाः सुखिनो नित्यं वस्त्रदश्चैव रूपवान् ।
स नरः सर्वदा भूपोयो ददाति वसुंधराम् ॥ १३ ॥

बृहस्पति स्मृतिः ।

अर्थ—अन्न का दान करनेवाला मनुष्य सर्वदा सुखी रहता है, वस्त्र का दान करने वाला रूपवान होता है, और जो मनुष्य पृथिवी दान करता है वह सर्वदा राजा होता है ॥ १३ ॥

प्रावृता वस्त्रदा यांति नग्नायांति त्ववस्त्रदाः ।
तृप्तायांत्यन्नदातारः क्षुधिता यांत्यनन्नदाः ॥ १६ ॥

बृहस्पति स्मृति ।

अर्थ—वस्त्र का दाता वस्त्रों से आच्छादित होकर (परलोक में जाता है) जिसने वस्त्र दान नहीं किये वह मनुष्य नंगा रहता है अन्न का देने वाला तृप्त होता है और जिसने अन्न दान नहीं किया वह क्षुधित होकर जाता है ॥१६॥

योन हिंस्यादहंह्यात्मा भूतग्रामं चतुर्विधम्।

तस्य देहाद्वियुक्तस्य भयं नास्ति कदाचन ॥ ३४ ॥

बृहस्पति स्मृति।

अर्थ—जो मनुष्य मैं सब का आत्मा हूं यह जान कर अंडज स्वेदज उद्भिज्ज जरायुज इन चार प्रकार के भूतों को दुःख नहीं देता उस जीवात्मा को देह से पृथक् होने पर भी कभी भय नहीं होता ॥ ३४ ॥

पंच कन्यानृतं हंतिदश हंति गवानृतम् ।

शतमश्वानृतं हंति सहस्रं पुरुषानृतम् ॥ ४३ ॥

हंति जातानजातांश्च हिरण्यार्थेऽनृतं वदन् ।

सर्वं भूम्यनृतं हंति मास्म भूम्यनृतं वदीः ॥ ४४ ॥

बृहस्पति स्मृति।

अर्थ—कन्या के सम्बन्ध में झूठ बोलने से पांचको गौ के सम्बन्ध में झूठ बोलने से दश को घोड़ेके निमित्त झूठ बोलने से सौ को और पुरुष के निमित्त झूठ बोलने में हज़ार को मारने वाला होता है ॥ ४३ ॥ सुवर्ण के सम्बन्ध में जो झूठ बोलता है उस के कुल में जो उत्पन्न हैं और जो उत्पन्न होगा वह उन सबको नष्ट कर देगा और पृथ्वी के निमित्त झूठ बोलने में सब को मारता है अतएव पृथ्वी के विषय में झूठ बोलना उचित नहीं है ॥ ४४ ॥

धनं फलति दानेन जीवितं जीवरक्षणात्।
रूपमारोग्यमैश्वर्यमहिंसाफलमश्नुते ॥ ७१ ॥

बृहस्पति स्मृति।

अर्थ—दान द्वारा धन सफल होता है, जीव की रक्षा करने से आयु की वृद्धि होती है, जो मनुष्य हिंसा नहीं करता वह ऐश्वर्य और आरोग्य रूप अहिंसा के फल को भोगता है ॥ ७१ ॥

नाके चिरं सवसते उपवासी च यो भवेत्।
सततं चैकशायी यः स लभेदीप्सितां गतिम् ॥७६॥

बृहस्पति स्मृति।

अर्थ—जो मनुष्य नियम पूर्वक उपवास करता है वह बहुत काल तक स्वर्ग में निवास करता है और जो मनुष्य निरन्तर एक ही शय्या पर शयन करता है अर्थात् एक ही स्त्री के साथ भोग करता है उस को अभिलषित गति प्राप्त होती है ॥ ७६ ॥

वीरासनं वीर शय्यां वीरस्थानमुपाश्रितः।
अक्षय्यास्तस्य लोकाः स्युस्सर्वकामागमास्तथा ॥७७॥

बृहस्पति स्मृति।

अर्थ—जो मनुष्य वीर आसन वीर शय्या और वीर स्थान में स्थित रहता है उसके सब लोक और सम्पूर्ण काम अक्षय हो जाते हैं ॥ ७७ ॥

उपवासं च दीक्षां च अभिषेकं च वासव।
कृत्वा द्वादशवर्षाणि वीरस्थानाद्विशिष्यते ॥७८॥

बृहस्पति स्मृतिः।

अर्थ—हे वासव ! जो मनुष्य बारह वर्ष तक उपवास दीक्षा और अभिषेक इन को करता है वह स्वर्ग में उत्तम होता है ॥ ७८ ॥

चतुर्णामपि वर्णानामाचारो धर्मपालकः ।
आचारभ्रष्टदेहानां भवेद्धर्मः पराङ्मुखः ॥ ३७ ॥

पाराशर स्मृति ऽध्यायः १ ।

अर्थ—आचार ही चारों वर्णों के धर्मों का पालन करनेहारा है कारण कि आचार के विना किये केवल धर्म के कथनमात्र से ही धर्म का पालन नहीं हो सकता जो मनुष्य आचार से भ्रष्ट हैं और जिन्हों ने धर्माचरण करना छोड़ दिया उन से धर्म विमुख हो जाता है ॥ ३७ ॥

सुक्षेत्रे वापयेद्बीजं सुपात्रे निक्षिपेद्धनम् ।
सुक्षेत्रे च सुपात्रे च ह्युप्तं दत्तं न नश्यति ॥४७॥
न पृच्छेद्गोत्रचरणे न स्वाऽध्यायं श्रुतंतथा ।
हृदये कल्पयेद्देवं सर्वदेवमयो हि सः ॥४८ ॥

पराशर स्मृतिः ऽध्याय १ ।

अर्थ—अच्छे खेत में बीज बोवे और सुपात्र को दान देवे अच्छे क्षेत्र में जो अन्न बोया जाता है और सुपात्र को दान दिया जाता है वह कभी नष्ट नहीं होता ॥ ४७ ॥ अतिथि से गोत्र आचरण तथा आपने किन २ शास्त्रों को पढ़ा या श्रवण किया है इत्यादि बात न पूछे कारण कि अतिथि देवस्वरूप है उसे देवता के समान जान कर उसका सन्मान करना उचित है ॥ ४८ ॥

यतिश्च ब्रह्मचारी च पक्वान्नस्वामिनावुभौ ।

तयोरन्नमदत्त्वा च भुक्त्वा चांद्रायणं चरेत । ५१ ।

पाराशर स्मृतिः ऽध्याय १ ।

अर्थ—यति और ब्रह्मचारी यह दोनों पक्कान्न की भिक्षा के अधिकारी हैं इन को बिना अन्न दिये हुए जो भोजन करता है उसकी शुद्धि चांद्रायण व्रत के करने से होती है ॥ ५१ ॥

यतये कांचनं दत्त्वा तांबूलं ब्रह्मचारिणे ।

चोरेभ्योऽप्य भयं दत्वा दातापि नरकं व्रजेत् ॥६०॥

पाराशर स्मृतिः अध्याय १

अर्थ—जो दाता सन्यासी को सुवर्ण आदिक धन दान करता है तथा ब्रह्मचारी को ताम्बूल और चोरों को अभय देता है वह नरक को जाता है ॥ ६० ॥

पुष्पं पुष्पं विचिनुयान्मूलच्छेदं न कारयेत् ।

मालाकार इवाऽरामे न यथांगार कारकः ॥६६॥

पाराशर स्मृतिः ऽध्याय १ ।

अर्थ—जिस भांति माली उपवन में से फूल फलादि को ग्रहण करता है परन्तु अग्नि लगाने वाले के समान वृक्षों की जड़ को नहीं काटता उसी भांति राजाओं को उचित है कि अपना भाग प्रजा से थोड़ा २ लेकर प्रजा की रक्षा करे सर्वापहारी न हो ॥ ६६ ॥

लाभ कर्म तथा रत्नं गवां च परिपालनम् ।

कृषिकर्म च वाणिज्यं वैश्यवृत्तिरुदाहृता ॥ ७० ॥

पाराशर स्मृतिः ऽध्याय १ ।

अर्थ—व्याज लेना रत्नों का क्रय विक्रय गौ का पालन

गौओं की रक्षा और उन के बछड़े आदिकों को बेचकर जीविका करना खेती और व्यापार यह वैश्यकी वृत्ति है ॥७०॥

लवणं मधु तैलं च दधि तक्रं घृतंपयः ॥
न दुष्येच्छूद्रजातीनां कुर्यात्सर्वेषु विक्रयम् ॥७२॥

पाराशर स्मृतिः ऽध्याय १ ।

अर्थ—लवण मधु तेल दही मट्ठा और घृत दुग्धादि सम्पूर्ण रसों के बेचने का शूद्र को अधिकार है ऐसा करने से शूद्र को दोष नहीं लगता ॥ ७२ ॥

विक्रीणन्मद्यमांसानि ह्यभक्ष्यस्य च भक्षणम् ।
कुर्वन्नगम्यागमनं शूद्रः पतति तत्क्षणात् ॥७३॥

पाराशर स्मृतिः ऽध्याय १ ॥

अर्थ—मदिरा और मांस को शूद्र न बेचे अभक्ष्य वस्तु का भक्षण न करे और अगम्या स्त्री के साथ गमन न करे इन कामों के करने से शूद्र तत्काल पतित होता है ॥७३॥

तिला रसा न विक्रेया विक्रेया धान्यतत्समाः
विप्रस्यैवं विधा वृत्तिस्तृण काष्ठादिविक्रयः ॥ ७ ॥

पाराशर स्मृतिः ऽध्याय २ ।

ब्राह्मणों को उचित है कि तिल सम्पूर्ण प्रकार के रस तथा लोह लाक्षादिक, फल, पुष्प, नील वा रक्तवर्ण के वस्त्रों को न बेचे ॥ ७ ॥

ब्राह्मणश्चेत्कृपिं कुर्यात्तन्महादोषमाप्नुयात् ।
अष्टागवं धर्महलं षड्गवं वृत्तिलक्षणम् ॥ ८ ॥
चतुर्गवं नृशंसानां द्विगवं गोजिघांसुवत् ।
द्विगवं वाहयेत्पादं मध्याह्ने तु चतुर्गवम् ॥ ६ ॥

षड्गवं तु त्रियामाहेऽष्टभिः पूर्णं तु वाहयेत् ।
न याति नरकेष्वेवं वर्तमानस्तु वै द्विजः ॥ १० ॥

ब्राह्मण को खेती करने से बड़ा पाप होता है परन्तु आठ बैलों वाला हल धर्म पूर्वक उत्तम है छः बैलों का हल मध्यम है ॥ ८ ॥ जो मनुष्य चार बैलों वाला हल जोतते हैं वे दया-हीन हैं और जो दो बैलों का हल जोतते हैं वह गोहिंसक हैं दो बैलों वाले हल को पहर भर दिन चढ़े तक जोतना उचित है और चार बैल वाले हल को मध्याह्न तक जोते ॥ ९ ॥ हल में छः बैलों को जोतकर तीसरे पहर तक कार्य ले और आठ बैल वाले हल को सायंकाल तक जोते, इस भांति आचरण करने से ब्राह्मण नरक में नहीं जाता ॥ १० ॥

कंडनी पेषणी चुल्ली उदकुंभी च मार्जनी ॥ १३ ॥
पंच सूना गृहस्थस्य अहन्यहनिवर्तते ।

ओखली, चक्की, चूल्हा तथा जल से भरे हुए पात्रों के स्थान बुहारी ॥ १३ ॥ इन पांचों वस्तुओं से नित्य प्रति हिंसा होती है।

वृक्षं छित्त्वा महीं भित्त्वा हत्वा च कृमि कीटकान्॥१५॥
पाराशर स्मृति अध्याय २

खेती करने से वृक्षों का छेदन और पृथ्वी का भेदन होता है और हल से कृमी आदिक असंख्य जीव मरते हैं ॥ १५ ॥

अतिमानादति क्रोधात्स्नेहाद्वायदिवाभयात् ।
उद्बध्नीयात्स्त्री पुमान्वा गतिरेषा विधीयते ॥ १ ॥
पूय शोणित सम्पूर्णे त्वन्धे तमसि मज्जति ।
षष्टि वर्ष सहस्राणि नरकं प्रतिपद्यते ॥ २ ॥
पाराशर स्मृति अध्याय ४ ।

जो स्त्री पुरुष अत्यन्त क्रोध, द्वेष वा लोक भयादि के कारण अपने आप फांसी लेकर मर जाए तो उसकी गति इस प्रकार होती है ॥ १ ॥ वह मनुष्य रुधिर और पीव से भरे हुए अन्धतामिस्र नामक नरक में डूबता है और फिर आठ सहस्र वर्ष तक निवास करता है ॥ २ ॥

बांधवानां सजातीनां दुर्वृत्तं कुरुते तु या ।
गर्भपातं च या कुर्यान्न तां संभाषयेत्क्वचित् ॥१९॥
यत्पापं ब्रह्महत्याया द्विगुणं गर्भ पातने ।
प्रायश्चित्तं न तस्यास्ति तस्यास्त्यागो विधीयते ॥२०॥

पाराशर स्मृतिः अध्याय ४ ।

जो स्त्री अपने बन्धु बान्धवों से अथवा अपनी जाति वालों से दुराचरण करती है या जो गर्भपात करती है उस स्त्री से कभी वार्तालाप न करे ॥ १९ ॥ जो पाप ब्रह्म हिंसा में होता है उस से दुगुना पाप गर्भ गिराने में होता है उस का प्रायश्चित्त नहीं है इस कारण उस स्त्री का त्याग ही करना उचित है ॥ २० ॥

मृते भर्त्तरि या नारी ब्रह्मचर्य व्रते स्थिता ।
सा मृता लभते स्वर्गं यथा ते ब्रह्मचारिणः ॥ ३१ ॥

पाराशर स्मृति अध्याय ४ ।

पति के मर जाने पर जो स्त्री ब्रह्मचर्य नियम में स्थित हो वह मरने के उपरान्त ब्रह्मचारी के समान स्वर्ग में जाती है ॥ ३१ ॥

क्रौंच सारस हंसांश्च चक्रवाकं च कुक्कुटम् ।
जालपादं च शरभं हत्वाऽहोरात्रतः शुचिः ॥ २ ॥

बलाकाटिट्टिभौ वापि शुकपारावतानपि ।
अटीनबकघाती च शुद्ध्यते नक्तभोजनात् ॥ ३ ॥
पाराशर स्मृति अध्याय ६ ।

कुंज, सारस, हंस, चकवा, कुक्कुट और जालपाद तथा जिन पक्षियों के चरण जुड़े हैं जिनके हड्डी हो इनका मारने वाला एक दिन रात उपवास करने से ही शुद्ध हो जाता है ॥ २ ॥ बगली, टटीरी, तोता तथा पारावत, मछली और बगला इनका मारने वाला नक्त भोजन व्रत के करने से शुद्ध हो जाता है ॥ ३ ॥

भेरुंडचापभासांश्च पारावतकपिंजलौ ।
पक्षिणां चैव सर्वेषामहोरात्रमभोजनम् ॥ ८ ॥
पाराशर स्मृति अध्याय ६ ।

भेरुंड, नीलकंठ, भास और पारावत तथा कपिंजल इन समस्त पक्षियों में से जिस किसी ने एक की भी हिंसा की हो उसकी शुद्धि एक दिन रात निराहार व्रत करने से होती है ॥ ८ ॥

शिशुमारं तथा गोधां हत्वा कूर्मं च शल्लकम् ।
वृंताक फलभक्षी वाप्यहोरात्रेण शुद्ध्यति ॥ १० ॥
पाराशर स्मृति अध्याय ६ ।

शिशुमार, गोह तथा कच्छप और शिल्लू, सांप इनकी हिंसा करने वाला मनुष्य और बैंगन के फल को खाने वाला अहोरात्र व्रत करने से शुद्ध होता है ॥ १० ॥

कुरंगं वानरं सिंहं चित्रं व्याघ्रं च घातयन् ।
शुद्ध्यते स त्रिरात्रेण विप्राणां तर्पणेन च ॥ १२ ॥

मृगरोहिद्वराहाणामवेर्बस्तस्य घातकः ।
अफालकृष्टमश्नीयादहोरात्रमुपोष्य सः ॥ १४ ॥

पाराशर स्मृति अध्याय ६ ।

मृग, वानर तथा सिंह, चीता और व्याघ्र की हिंसा करने वाला मनुष्य तीन दिन तक उपवास कर सुपात्र ब्राह्मणों को भोजन करावे ॥ १३ ॥ मृग, रोहित, शूकर तथा भेड और बकरी की हिंसा करने वाला अहोरात्र उपवास कर बिना हल से जुते हुए अन्न को खाकर शुद्ध होता है ॥ १४ ॥

सद्यो निःसंशये पापेनभुञ्जीतानुपस्थितः ।
भुंजानो वर्द्धयेत्पापं पर्षद्यत्र न विद्यते ॥ ४ ॥
संशये तु न भोक्तव्यं यावत्कार्यविनिश्चयः ।
प्रमादस्तु न कर्त्तव्यो यथैवासंशयस्तथा ॥ ५ ॥

पाराशर स्मृतिः-अध्यायः ८

यदि निश्चय ही पाप किया है यह विदित हो जाय तो उस पापको धर्मज्ञ ब्राह्मणों के अर्थ निवेदन किये बिना भोजन न करे यदि बिना परिषद् के निकट गये भोजन कर ले तो पाप की वृद्धि होती है ॥ ४ ॥ यदि पाप करने में सन्देह हो जाय तो उस का निश्चय बिना हुए भोजन न करे और जब तक उसका निश्चय न हो जाय तब तक असावधान भी रहना उचित नहीं ॥ ५ ॥

तेऽपि पापकृतां वैद्याहंतारश्चैव पाप्मनाम् ।
व्याधितस्य यथा वैद्या बुद्धिमन्तोरुजापहाः ॥ ७ ॥

पाराशर स्मृतिः अध्यायः ८

कारण कि उस के पापों को जान कर जिस भान्ति बुद्धि-

मान् वैद्य रोगी की पीड़ाको दूर करता है उसी प्रकार ब्राह्मण उस के पाप को नष्ट कर देने का उपाय कह देंगे ॥ ७ ॥

प्रायश्चित्ते समुत्पन्ने ह्रीमान्सत्यपरायणः ।
मृदुरार्जव संपन्नः शुद्धिं गच्छेत मानवः ॥ ८ ॥

पाराशर स्मृतिः अध्यायः ८

(इस भान्ति परिषद् की आज्ञानुसार) पाप का प्रायश्चित करने पर लज्जाशील सत्यपरायण सरलस्वभाव पुरुष शीघ्र ही शुद्धि प्राप्त करते हैं ॥ ८ ॥

अत ऊर्ध्वं तु ये विप्राः केवलं नामधारकाः ।
परिषत्वं न तेष्वस्ति सहस्रगुणितेष्वपि ॥ २३ ॥
यथा काष्ठमयो हस्ती यथा चर्ममयो मृगः ।
ब्राह्मणस्त्वनधीया नस्त्रयस्ते नामधारकाः ॥ २४ ॥

पाराशर स्मृतिः अध्याय ८

इसके अतिरिक्त जो केवल नाममात्र के ब्राह्मण हैं वह सहस्रों एकत्रित होने पर भी परिषद् नहीं होसकती ॥ २३ ॥ जिस भान्ति काठ का हाथी जैसा चर्म का मृग वेद का न जानने वाला ब्राह्मण भी उसी प्रकार है यह तीनों केवल नाम मात्र के धारण करने वाले हैं ॥ २४ ॥

ग्रामस्थानं यथा शून्यं यथा कूपस्तु निर्जलः ।
यथा हुतमनग्नौ च अमंत्रो ब्राह्मणस्तथा ॥ २५ ॥
यथा षंढोऽफलः स्त्रीषु यथा गौरुषराऽफला ।
यथा चाज्ञेऽफलं दानं तथा विप्रोऽनृचोऽफलः ॥२६॥

पाराशर स्मृतिः अध्याय ८

जिस भान्ति शून्य ग्राम निर्जल कूप और अग्निहीन भस्म के ढेरमें हवन करना निष्फल है उसी भान्ति विना मन्त्रा का जानने वाला ब्राह्मण,भी निष्फल है ॥ ३५ ॥ जिस भान्ति नपुंसक का स्त्रीके साथ संभोग निष्फल हो जाता है जिस भांति ऊपर भूमि निष्फल है जिस भांति मूर्ख को दान देना निष्फल है उसी भांति वेद मन्त्रोंको न जानने वाला ब्राह्मण निषिद्ध है।

उष्णे वर्षति शीते वा मारुते वाति वा भृशम्।
न कुर्वीतात्मनस्त्राणं गोरकृत्वा तु शक्तितः ॥ ४० ॥
आत्मनो यदि वाऽन्येषां गृहे क्षेत्रेऽथवा खले।
भक्षयन्तीं न कथयेत्पिबन्तं चैव वत्सकम् ॥ ४१ ॥

पाराशर स्मृतिः अध्याय ८

चाहे गर्म पवन चले चाहे ठण्डी हवा चले चाहे आन्धी चलती हो चाहे वर्षा होती हो परन्तु अपनी रक्षा की ओर ध्यान न देकर अपनी शक्ति के अनुसार गौ की रक्षा करनी अवश्य कर्तव्य है ॥ ४० ॥ अपने या दूसरे के घर में अथवा खेत में वा खल में यदि गौ कुछ धान्यादिक खाती हो तो कुछ न बोले और जो बच्छड़ा गौ का दूध पीता हो तो भी कुछ न कहे ॥ ४१ ॥

ब्राह्मणार्थे गवार्थे वा यस्तु प्राणान्परित्यजेत्।
मुच्यते ब्रह्महत्याया गोप्ता गोब्राह्मणस्य च ॥ ४२ ॥

पाराशर स्मृतिः अध्याय ८

जो मनुष्य ब्राह्मण और गौ के निमित्त अपने प्राण त्याग करता है वह और ब्राह्मण और गौकी रक्षा करने वाला पुरुष ब्रह्महत्या के पाप से छूट जाते हैं ॥ ४२ ॥

गवां संरक्षणार्थाय न दुष्येद्रोधबन्धयोः ।
तद्वधं तु न तं विंद्यात्कामाकामकृतं तथा ॥ १ ॥

पाराशर स्मृतिः अध्याय ६

भली भान्ति शिक्षा करने की इच्छा से गौ को बान्धने या रोकने में यदि गोहत्या हो जाय तो इस में दोष नहीं है और उस अवस्था में वह कामकृत वा अकामकृत गोवध नहीं कहा जा सकता ॥ १ ॥

अतिदाहेऽतिवाहे च नासिकाभेदने तथा ।
नदी पर्वतसंचारे प्रायश्चित्तं विनिर्दिशेत् ॥ २८ ॥
अतिदाहे चरेत्पादं द्वौ पादौ वाहने चरेत् ।
नासिक्ये पादहीनं तु चरेत्सर्वं निपातने ॥ २६ ॥
दहनात्तु विपद्येत अनड्वान्योक्त यंत्रितः ।
उक्तं पाराशरेणैव ह्येकं पादं यथाविधि ॥ ३० ॥

पाराशर स्मृतिः अध्याय ६

दागते समय में यदि अधिक दग्ध हो जाय या अधिक बोझ ले जाने के निमित्त लादा जाय नाथा जाय या कष्ट देने वाले नदी पर्वतके मार्ग से ले जाय तो प्रायश्चित्त करना उचित है॥२८॥ अधिक दग्ध करने पर एकपाद प्रायश्चित्त करे बोझा अधिक लादने पर दोपाद प्रायश्चित्त करे नासिका के छेदने पर तीनपाद और मारनेमें पूर्ण चतुष्पादका प्रायश्चित्त करना चाहिये ॥ २६ ॥ यदि जोत में बन्धा बैल अग्नि से मर जाय तो विधि सहित एकपाद प्रायश्चित्त करने से शुद्ध होता है यह पराशर मुनि का वचन है ॥ ३० ॥

रोधनं बंधनं चैव भारप्रहरणं तथा ।

दुर्गप्रेरणयोक्तं च निमित्तानि वधस्य षट् ॥ ३१ ॥

पाराशर स्मृतिः अध्याय ६

जोत बन्धन रोध अधिक बोझा लादना प्रहार और जोत कर नदी पर्वत इत्यादि दुर्गम मार्गों में ले जाना यह छः ही प्रत्येक वध का मूल है ॥ ३१ ॥

इह यो गोवधं कृत्वा प्रच्छादयितुमिच्छति ।
स याति नरकं घोरं कालसूत्रमसंशयम् ॥ ६० ॥
विमुक्तो नरकात्तस्मान्मर्त्यलोके प्रजायते ।
क्लीबो दुःखी च कुष्ठी च सप्तजन्मानि वै नरः ॥६१॥
तस्मात्प्रकाशयेत्पापं स्वधर्मं सततं चरेत् ।
स्त्रीबालभृत्यरोगार्तेष्वति कोपं विवर्जयेत् ॥ ६२ ॥

पाराशर स्मृतिः अध्याय ६

जो मनुष्य इस लोक में गोवध करके उस पापको छिपाने की इच्छा करता है वह निश्चय ही कालसूत्रनामक घोर नरक में जाता है ॥ ६० ॥ इसके उपरान्त उस भयानक नरकसे छूट कर फिर इसी मृत्यु लोकमें मनुष्य योनिमें जन्म लेता है और फिर जन्म लेकर बहिरा दुःखी कोढी होकर क्रमानुसार सात जन्म उस को व्यतीत करने पड़ते हैं ॥ ६१ ॥ इस कारण पाप करके उस को छिपाने की चेष्टा कदापि न करे प्रकाश करदे और स्त्री बालक सेवक गौ तथा इन के ऊपर क्रोध कदापि न करे ॥ ६२ ॥

एकैकं ह्रासयेद्ग्रासं कृष्णे शुक्ले च वर्द्धयेत् ।
अमावस्यां न भुञ्जीत ह्येष चांद्रायणो विधिः ॥ २ ॥
कुक्कुटांडप्रमाणं तु ग्रासं वै परिकल्पयेत् ।

अन्यथा जातदोषेण न धर्मो न च शुद्ध्यते ॥ ३ ॥

पाराशर स्मृतिः अध्याय १०

कृष्ण पक्ष में प्रतिदिन एक ग्रास कमती करता रहे और शुक्ल पक्ष में प्रतिदिन एक २ ग्रास को बढ़ावे और अमावस्या के दिन कुछ भी न खाय यह चांद्रायण व्रत की विधि है ॥२॥ एक २ ग्रास को मुरगी के अण्डों के समान बड़ा बनावे । इसके अन्यथा करने से न धर्म है और न शुद्धि ही होती है ॥३॥

चंडालीं वा श्वपाकीं वा अनुगच्छति यो द्विजः ।

त्रिरात्रमुपवासी च विप्राणामनुशासनात् ॥ ५ ॥

पाराशर स्मृतिः अध्याय १० ।

जो ब्राह्मण चंडाली वा श्वपची में गमन करता है वह ब्राह्मण, ब्राह्मणों की आज्ञानुसार तीन रात्रि उपवास करे ॥५॥

पतत्यर्द्धं शरीरस्य यस्य भार्या सुरां पिबेत् ।

पतितार्द्धे शरीरस्य निष्कृतिर्न विधीयते ॥ २८ ॥

पाराशर स्मृतिः अध्याय १० ।

जो स्त्री मदिरा पान करती है उसका आधा शरीर पतित हो जाता है इस प्रकार से जिसका शरीर पतित हो गया है उसकी शुद्धि नहीं है वह नरक को जाती है इस में सन्देह नहीं ॥ २८ ॥

गोमूत्रं गोमयं क्षीरं दधि सर्पिः कुशोदकम् ।

एक रात्रोपवासश्च कृच्छ्रं सांतपनं स्मृतम् ॥ ३० ॥

पाराशर स्मृतिः अध्याय १० ।

गोमूत्र, गौ का गोबर, दूध, दही, घृत और कुश का जल यह पंचगव्य पान कर एक रात्रि उपवास करे यह सांतपन कहाता है ॥ ३० ॥

जारेण जनयेद्गर्भं मृते त्यक्ते गते पतौ ।
तांत्यजेद् परे राष्ट्रे पतितां पापकारणीम् ॥ ३१ ॥

पाराशर स्मृतिः अध्याय १० ।

पति के त्याग करने से या पति के मर जाने से स्त्री अन्य पुरुष के संयोग से गर्भवती हो जाय तो उस पापिनी पतित स्त्री को अन्य राज्य में छोड़ आवे ॥ ३१ ॥

पीयूषं श्वेत लशुनं वृंताकफलगृंजने ।
पलांडुं वृक्षनिर्यासान्देवस्वंकवकानि च ॥ १० ॥
उष्ट्री क्षीर मवीक्षीरमज्ञानाद्‌भुंजते द्विजः ।
त्रिरात्रमुपवासेन पंचगव्येन शुद्ध्यति ॥ ११ ॥

पाराशर स्मृतिः अध्याय ११ ।

पेवची, श्वेत लहसन, बैंगन, गाजर, प्याज, वृक्ष का गोंद, देवता का द्रव्य, कवक (पृथ्वी की ढाल) ॥ १० ॥ ऊंटनी तथा भेड़ का दूध जो ब्राह्मण इन वस्तुओं को अज्ञानता से खाता है वह तीन रात्रि उपवास कर पंचगव्य के पीने से शुद्ध हो जाता है ॥ ११ ॥

नवाहमति कृच्छ्री स्यात्पाणिपूरान्न भोजनः ।
त्रिरात्रमुपवासः स्यादतिकृच्छ्रः स उच्यते ॥५५॥

पाराशर स्मृति अध्याय ११ ।

एक अंजुली भर अन्न को नौ दिन तक खाय वह अति कृच्छ्र कहाता है और तीन रात्रि उपवास करे उसे कृच्छ्र कहते हैं ॥ ५५ ॥

चैत्यवृक्षश्चितिः पूयश्चंडालः सोम विक्रयी ।
एतांस्तु ब्राह्मणः स्पृष्ट्वा सवासा जलमाविशेत् ॥२५॥

पाराशर स्मृति अध्याय १२ ।

* चैत्य का वृक्ष (इसकी पूजा बौद्ध मत वाले करते हैं) चितारोध चांडाल सोमलता का वेचने वाला इन सब का स्पर्श करने से ब्राह्मण वस्त्रों सहित स्नान करे ॥ २५ ॥

गृहस्थतु दयायुक्तो धर्ममेवानुचिंतयेत् ।
पोष्यवर्गार्थसिद्ध्यर्थं न्यायवर्ती सबुद्धिमान् ॥ ४२ ॥
न्यायोपार्जित वित्तेन कर्त्तव्यं ह्यात्मरक्षणम् ।
अन्याये नतुयो जीवेत्सर्व कर्म बहिष्कृतः ॥ ४३ ॥

पाराशर स्मृतिः अध्याय १२।

दयावान गृहस्थ सर्वदा धर्म की चिन्ता करै और अपने पुत्र वा भृत्य आदि के प्रयोजन की सिद्धि के लिये बुद्धिमान् सर्वदा न्याय का वर्ताव करता रहै ॥ ४२ ॥ न्याय के उपार्जन किये हुए धन से अपनी रक्षा करै जो अन्याय से जीवन व्यतीत करता है वह धर्मों से रहित हैं ॥ ४३ ॥

श्रांतः क्रुद्धःस्तमोऽधोवा क्षुत्पिपासाभयार्दितः ।
दानं पुण्यम् कृत्वा वा प्रायश्चित्तं दिनत्रयम् ॥५५॥

पाराशर स्मृति अध्याय १२।

थका या क्रोधी अथवा अज्ञानता से अन्धा क्षुधा तृष्णा से दुःखी उस ब्राह्मण को दान पुण्य करना उचित नहीं, वह केवल तीन दिन तक ही प्रायश्चित्त करे ॥ ५५ ॥

---

* चैत्य वृक्ष जैन मत में उसको कहते हैं जिस वृक्ष के नीचे श्री तीर्थंकरदेव भगवान् को केवल ज्ञान उत्पन्न होता है अतः वह वृक्ष लोगों की दृष्टि में माननीय हो जाता है तथा इसी का अनुकरण बौद्धमत ने किया है सो इस कथन से यह भली भांति सिद्ध हो जाता है कि उक्त स्मृतिकार के पहले जैन मत और बौद्धमत भली प्रकार से विद्यमान थे।

नापवित्तोऽपि भाषेत नाव्रजेत्ताडितोऽपि वा ।
विद्वेषमथ पैशुन्यं हिंसनं चार्कवीक्षणम् ॥ २७ ॥
तौर्य्यत्रिकानृतोन्मादपरिवादानलंक्रियाम् ।
अञ्जनोद्वर्तनादर्शस्रग्विलेपनयोषितः ॥ २८ ॥
वृथाटनमसंतोषं ब्रह्मचारी विवर्जयेत् ।
ईषच्चलितमध्याह्नेऽनुज्ञातो गुरुणा स्वयम् ॥ २९ ॥
अलोलुपश्चरेद्भैक्षं वृत्तिपूत्तम् वृत्तिषु ।
सद्यो भिक्षान्नमादाय वित्तवत्तदुपस्पृशेत् ॥ ३० ॥

व्यास स्मृतिः अध्याय १ ।

यदि किसी समय गुरुदेव तिरस्कार भी करें तो उनके सन्मुख कुछ न बोले और गुरू की ताडना करने पर भी वहां से न भागे, वैर (किसी के साथ शत्रुता) पैशुन्य (चुगलपन) हिंसा सूर्य का दर्शन ॥ २७ ॥ तौर्यात्रिक (गाना बजाना) झूठ, उन्माद, निन्दा, भूषण, अंजन, उबटन, (आदर्श शीशेका) देखना, माला चन्दन आदि का लगाना और स्त्रीसंग ॥२८॥

वृथा फिरना असंतोष इन का ब्रह्मचारी त्याग करदे और मध्याह्न समय उपस्थित होने पर स्वयं ही गुरुकी आज्ञासे ॥२९॥ चपलता को छोड़ कर उत्तम आचरण करने वाली जातियों में भिक्षा मांगे और शीघ्र ही भिक्षा को लेकर धन की समान उसका उपस्पर्श (रक्षा) करे ॥ ३० ॥

मनोवाक्कर्मभिः शुद्धा पतिदेशानुवर्तिनी ।
छायेवानुगता स्वच्छा सखीव हितकर्मसु ॥ २६ ॥
दासीवादिष्टकार्य्येषु भार्य्या भर्तुः सदा भवेत् ।

ततोऽन्नसाधनं कृत्वा पतये विनिवेद्यतत् ॥ २७ ॥

व्यास स्मृतिः अध्याय २

वह पतिव्रता स्त्री पति की आज्ञानुवर्तिनी होकर मन वचन और कायासे पवित्र स्वभाव प्रकाशकर छायाकी समान पति के पीछे चले निर्मल चित्तवाली सखी की समान पतिका हित करे ॥ २६ ॥ स्वामी की आज्ञापालन करने के विषय में दासी के समान व्यवहार करे इसके उपरान्त भोजन बनाकर पति को निवेदन करे ॥ २७ ॥

पादधावनसंमानाभ्यंजनादिभिरर्चितः ।

त्रिदिवं प्रापयेत्सद्यो यज्ञस्याभ्याधिकोऽतिथिः ॥ ३६ ॥

व्यास स्मृतिः अध्याय ३

अतिथि के चरण धोने, भली भान्ति सत्कार करने और उवटन आदि मलने से यज्ञ से भी अधिक स्वर्ग की प्राप्ति होती है ॥ ३६ ॥

गुरुभक्तो भृत्यपोषीदयावान न सूयकः ।

नित्यजापी च होमी च सत्यवादी जितेन्द्रियः ॥३॥

स्वदारे यस्य संतोषः परदारनिर्वतनम् ।

अपवादोऽपि नो यस्य तस्य तीर्थफलं गृहे ॥ ४ ॥

व्यास स्मृतिः अध्याय ४

जो गृहस्थी गुरुमें भक्ति करने वाला भृत्योंका प्रतिपालक दयालु निन्दा न करने वाला सर्वदा जप होम करने वाला सत्यभाषी और जितेन्द्रिय है ॥ ३ ॥ जिसे अपनी स्त्री से ही सन्तोष है पराई स्त्री की इच्छा न करने वाला जिसकी कहीं निन्दा न हो उस गृहस्थी को घर में बैठे ही तीर्थ का फल मिलता है ॥ ४ ॥

इन्द्रियाणि वशीकृत्य गृह एव वसेन्नरः ।
तत्र तस्य कुरुक्षेत्रं नैमिषं पुष्कराणि च ॥ १३ ॥
गंगाद्वारं च केदारं सन्निहत्यं तथैव च ।
एतानि सर्वतीर्थानि कृत्वा पापैः प्रमुच्यते ॥ १४ ॥

व्यास स्मृति अध्याय ४

इन्द्रियों को वश में कर गृहस्थाश्रम में जो मनुष्य वास करता है उसको घर में ही कुरुक्षेत्र नैमिष और पुष्कर ॥१३॥ हरिद्वार केदार सन्निहत्य (कुरुक्षेत्र) यह सम्पूर्ण तीर्थ हैं वह इन सब तीर्थों के प्रभाव से सब पापों से छूट जाता है ॥१४॥

यद्ददाति यदश्नाति तदेव धनिनो धनम् ।
अन्ये मृतस्य क्रीडन्ति दारैरपि धनैरपि ॥ १७ ॥
किं धनेन करिष्यन्ति देहिनोऽपि गतायुषः ।
यद्वर्द्धयितुमिच्छं तस्तच्छरीरमशाश्वतम् ॥ १८ ॥
अशाश्वतानि गात्राणि विभवो नैव शाश्वतः ।
नित्यं सन्निहितो मृत्युः कर्तव्यो धर्मसंग्रहः ॥ १९ ॥
यदि नाम न धर्माय न कमाय न कीर्तये ।
यत्परित्यज्य गंतव्यं तद्धनं किं न दीयते ॥ २० ॥
जीवन्ति जीविते यस्य विप्रमित्राणि बांधवाः ॥
जीवितं सफलं तस्य आत्मार्थे को न जीवति ॥२१॥
पशवोऽपि हि जीवंति केवलात्मोदरंभराः ।
किं कायेन सुगुप्तेन बलिना चिरजीविना ॥२२॥
ग्रासादर्द्धमपि ग्रासमर्थिभ्यः किं न दीयते ।

इच्छानुरूपो विभवः कदाकस्य भविष्यति ॥२३॥
व्यास स्मृतिः ऽध्यायः ४

अर्थ—जो धन दान दिया जाता है भोगा जाता है वही धनी का धन है मृतक के धन रख जाने पर अन्य पुरुष उस की स्त्री वा धन से क्रीडा करते हैं ॥ १७ ॥ धन को रख कर जो मर जाते हैं वह उस धन से आत्मा का क्या उपकार करेंगे धन को भोग कर जिस शरीर को पुष्ट करने की इच्छा करते हैं सो वह शरीर भी सर्वदा रहने वाला नहीं ॥ १८ ॥ देह और धन सर्वदा रहने वाला नहीं सर्वदा मृत्यु सन्मुख खड़ी रहती है इस कारण धर्म का संग्रह करना उचित है ॥ १६ ॥ जो धन सम्पत्ति धर्म के निमित्त या अभिलाषा पूर्ण के निमित्त तथा कीर्ति के निमित्त न हुई उस धन को त्याग कर परलोक जाना होगा फिर उस धन को किस कारण दान नहीं करता ॥ २० ॥ जिस मनुष्य के जीवित रहने से ब्राह्मण मित्र तथा बंधु बांधव जीवित रहते हैं उन्हीं का जीवन सफल है अपने लिए कौन नहीं जीता ॥ २१ ॥ केवल अपने पेट भरने के लिए तो पशु भी जीवन धारण करते हैं (जो मनुष्य धन से दानादि सत्कार्य नहीं करते) उन्हें भली भांति शरीर की रक्षा करने से या बलवान् होने तथा चिर-जीवी होने से ही क्या फल है ॥ २२ ॥ यदि एक ग्रास वा आधा ग्रास भी अभ्यागत को न दे (और यह कहे कि जब इच्छानुसार धन मिलेगा तब देंगे) सो इच्छानुसार धन कब मिला और किस के होता है ॥ २३ ॥

अदाता पुरुषस्त्यागी धनं संत्यज्य गच्छति ।
दातारं कृपणं मन्ये मृतोऽप्यर्थं न मुंचति ॥२४॥
व्यास स्मृतिः ऽध्यायः ४

अर्थ—अदाता (न देने वाला ही) पुरुष त्यागी है कारण कि वह धन को छोड़ कर जाता है परन्तु मैं दाता को कृपण मानता हूं कारण कि दाता मर कर भी धन को नहीं छोड़ता अर्थात् मरने पर भी उसे धन मिलता है ॥ २४ ॥

प्राणनाशस्तु कर्तव्यो यः कृतार्थो न समृतः ।
अकृतार्थस्तु यो मृत्युं प्राप्तः खरसमो हि सः ॥२५॥

व्यास स्मृतिः ऽध्यायः ४

अर्थ—एक दिन अवश्य ही प्राण त्याग करने होंगे परन्तु जो कृतार्थ है वह मृतक नहीं हुआ और जो विना धर्म किए मरा है वह गधे के समान है ॥२५॥

अनाहूतेषु यद्दत्तं यच्च दत्तमयाचितम् ।
भविष्यति युगस्यांतस्तस्यांतो न भविष्यति ॥२६॥
मृतवत्सायथा गौश्च कृष्णा लोभेनदुह्यते ।
परस्परस्य दानानि लोकयात्रा न धर्मतः ॥२७॥
अदृष्टे चाशुभे दानं भोक्ता चैव न दृश्यते ।
पुनरागमनं नास्ति तत्र दानमनंतकम् ॥२८॥

व्यास स्मृतिः ऽध्यायः ४

अर्थ—विना मांगे जो दान दिया है युग का तो अन्त हो जायगा परन्तु उस दान का अन्त नहीं होगा ॥ २६ ॥ मरे बछड़े वाली काली गौ को जिस भांति दुहते हैं परन्तु उसके दूध से देवकार्य नहीं होता इसी भांति परस्पर के दान का भी कोई फल नहीं होता केवल लोकाचार की रक्षा होती है परन्तु उससे पुण्य नहीं होता ॥ २७ ॥ जो मनुष्य पाप को न देखकर (अर्थात् किसी पाप के लिए न दे) वा दान के

भोक्ता को न देखकर (यह इच्छा न करे कि इसका फल मुझे मिले) और यह भी अभिलाषा न करे कि मैं फिर इस संसार में आऊंगा तो उस समय में दान का फल अनन्त होता है अर्थात् जो दान निष्काम होकर किया जाता है वही सफल होता है ॥ २८ ॥

मातापितृषु यद्दद्याद्भ्रातृषु श्वसुरेषु च ।
जायापत्येषु यद्द्यात्सोऽनन्तः स्वर्गसंक्रमः ॥२९॥
पितुः शतगुणं दानं सहस्रं मातुरुच्यते ।
भगिन्यां शतसाहस्रं सोदरे दत्तमक्षयम् ॥३०॥

व्यास स्मृतिः ऽध्यायः ४

अर्थ—माता पिता भाई श्वसुर स्त्री पुत्र वा पुत्री जो इन को दान करता है वह अनन्त काल तक स्वर्ग में निवास करता है ॥ २९ ॥ पिता को दान करने से शतगुणा फल मिलता है और भगिनी को दान दिया जाता है वह लाख गुणा होता है और जो भाई को दिया जाता है उसका कभी भी नाश नहीं होता ॥ ३० ॥

यथा काष्ठमयो हस्ती यथा चर्ममयोमृगः ।
यश्च विप्रोऽनधीयानस्त्रयस्ते नामधारकाः ॥३७॥
ग्रामस्थानं यथा शून्यं यथा कूपश्च निर्जलः ।
यश्च विप्रोऽनधीयानस्त्रयस्ते नामधारकाः ॥३८॥

व्यास स्मृतिः ऽध्यायः ४

अर्थ—जिस भांति काठ का हाथी और जैसा चमड़े का मृग होता है उसी भांति विना पढ़ा ब्राह्मण है यह तीनों नाममात्रधारी हैं अर्थात् निरर्थक हैं ॥३७॥

शून्य ग्रामस्थान और जल हीन कुआं जिस प्रकार किसी अर्थ का नहीं उसी भान्ति विना पढ़ा ब्राह्मण है यह तीनों नाममात्र के ही धारण करने वाले हैं ॥ ३८ ॥

शतेषु जायते शूरः सहस्रेषु च पण्डितः ।
वक्ता शतसहस्रेषु दाता भवति वा न वा ॥५८॥
न रणे विजयाच्छूरोऽध्ययनान्न च पण्डितः ।
न वक्ता वाक्पटुत्वेन न दाता चार्थदानतः ॥५९॥
इन्द्रियाणां जये शूरो धर्मं चरति पण्डितः ।
हितप्रायोक्तिभिर्वक्ता दाता सन्मानदानतः ॥६०॥

व्याසस्मृतिः अध्यायः ४ ।

अर्थ—सौ में एक शूरवीर हजार में एक पण्डित और लाख में एक वक्ता होता है और दाता तो हो वा न हो ॥५८॥ रण को जीतने से ही शूरवीर नहीं होता पढ़ने से ही पण्डित नहीं होता वाणी से ही वक्ता नहीं होता और धन के दान से ही दाता नहीं होता ॥ ५९ ॥ परन्तु जो इन्द्रियों को जीतता है वही शूर है जो धर्माचरण करता है वही पण्डित है जो हित-कारी और प्रियवचन कहे वही वक्ता है और जो मनुष्य सन्मानपूर्वक दानकरे वही दाता है ॥

ऊषरे वापितं बीजं भिन्नभांडेषु गोदुहम् ।
हुतं भस्मनि हव्यं च मूर्खे दानमशाश्वतम् ॥६२॥

व्यासस्मृतिः अध्यायः ४

अर्थ—ऊपर भूमि में बोया हुआ बीज फूटे पात्र में दुहा हुआ दूध भस्म में किया हुआ हवन और मूर्खको दिया हव्य और दान यह सभी निष्फल हैं ॥ ६२ ॥

यजनं याजनं दानं तथैवाध्यापनक्रिया ।
प्रतिग्रहं चाध्ययनं विप्रकर्माणि निर्दिशेत् ॥२॥
दानं चाध्ययनं चैव यजनं च यथाविधि ।
क्षत्रियस्य च वैश्यस्य कर्मेदं परिकीर्तितम् ॥३॥
क्षत्रियस्य विशेषेण प्रजानां परिपालनम् ।
कृषिगोरक्षवाणिज्यं विशश्चपरिकीर्तितम् ॥४॥
शूद्रस्य द्विजशुश्रूषा सर्वशिल्पानि वाप्यथ ।

शङ्खस्मृतिः अध्यायः १

अर्थ—यज्ञ करना यज्ञ कराना दान देना और पढ़ाना प्रतिग्रह और पढ़ना यह छः कर्म ब्राह्मणों के कहे हैं ॥ २ ॥ दान, पढ़ना, और विधिके अनुसार यज्ञ करना यह तीन कर्म क्षत्रिय और वैश्यों के हैं ॥ ३ ॥ क्षत्रिय जाति का विशेष कर्म प्रजा की पालना करना है और वैश्यका खेती गौओं की रक्षा तथा लैन देन कहा है ॥ ४ ॥ और तीनों जातियों की सेवा करना और सम्पूर्ण कारीगरी यह शूद्र का कर्म है ॥

माता पिता गुरुश्चैव पूजनीयास्सदा नृणाम् ।
क्रियास्तस्याफलाः सर्वा यस्यै तेनादृतस्त्रयः ॥ ३ ॥
चतुर्दशीं पंचदशीमष्टमीं राहुसूतकम् ।
उल्कापातं महीकंपमाशौचं ग्रामविप्लवम् ॥ ७ ॥
इन्द्रप्रयाणं श्वहतं सर्वसंघात निस्वनम् ।
वाद्यकोलाहलं युद्धमनध्यायान्विवर्जयेत् ॥८॥
नाधीयीताभियुक्तोऽपि यानंगोन च नौगतः ।

देवायतनवल्मीकश्मशानशवसन्निधौ ॥६॥

शङ्खस्मृतिः अध्यायः ३

मनुष्यों को सर्वदा माता पिता और गुरु यह तीनों पूजने योग्य हैं कारण कि जो इन तीनों का आदर नहीं करता है उसके सम्पूर्ण कर्म निष्फल हो जाते हैं ॥ ३ ॥

चौदस पूर्णमासी अष्टमी ग्रहण उल्का बिजली का पात भूकम्प अशौच ग्राम का उपद्रव ॥ ७ ॥ इन्द्रप्रयाण (वर्षा ऋतु में धनुष का दर्शन) कुत्ते का मरण शवके समूहका शब्द बाजोंका कोलाहल और युद्ध इन दिनोंमें न पढ़े ॥ ८ ॥ सवारी और नाव में देवमन्दिर में बामी में श्मशानमें और शव के निकट बैठ कर किसी के कहने पर भी न पढ़े ॥ ६ ॥

मधु मांसांजनं श्राद्धं गीतं नृत्यं च वर्जयेत् ।
हिंसां परापवादं च स्त्रीलीलां च विशेषतः ॥१३॥

शङ्खस्मृतिः अध्यायः ३

अर्थ—मधु (शहद आदिक मीठापदार्थ वा मदिरा) मांस अंजन श्राद्ध का भोजन गान नाच हिंसा पराई निन्दा और विशेष कर स्त्रियों की लीला इन्हें त्याग दे ॥ १३ ॥

पंचसूना गृहस्थस्य चुल्ली पेषण्युपस्करः ।
कंडनी चोदकुंभश्च तस्य पापस्य शान्तये ॥ १॥

शङ्खस्मृतिः अध्यायः ५

अर्थ—गृहस्थी में सर्वदा पांच हत्या होती हैं चूल्हा चक्की बुहारी ओखली और जलका घड़ा इन हत्याओं के पाप की शान्ति के निमित्त ॥ १ ॥

न व्रतैर्नोपवासैश्च धर्मेण विविधेन च ।
नारी स्वर्गमवाप्नोति प्राप्नोति पतिपूजनात् ॥८॥

न व्रतैर्नोपवासैश्च न च यज्ञैः पृथग्विधैः।
राजा स्वर्गमवाप्नोति प्राप्नोति परिपालनात् ॥९॥
न स्नानेन न मौनेन नैवाग्निपरिचर्यया।
ब्रह्मचारी दिवं याति संयाति गुरुपूजनात् ॥१०॥
नाग्निशुश्रूषया क्षान्त्या स्नानेन विविधेन च।
वानप्रस्थो दिवं याति याति भोजनवर्जनात् ॥११॥
न दंडैर्न च मौनेन शून्यागाराश्रयेण च।
यतिः सिद्धिमवाप्नोति योगेनाप्नोत्यनुत्तमम् ॥१२॥
न यज्ञैर्दक्षिणावद्भिर्वन्हिशुश्रूषया तथा।
गृही स्वर्गमवाप्नोति यथा चातिथिपूजनात् ॥१३॥
तस्मात्सर्वप्रयत्नेन गृहस्थोऽतिथिमागतम्।
आहारशयनाद्येन विधिवत्प्रतिपूजयेत् ॥१४॥

शङ्खस्मृतिः अध्यायः ५

अर्थ--व्रत उपवास और अनेक भांति के धर्म करने से स्त्री को स्वर्ग की प्राप्ति नहीं होती परन्तु केवल एक मात्र पति के पूजन से स्वर्ग को जाती है ॥ ८ ॥ व्रत उपवास और अनेक प्रकार के यज्ञों को करके राजा को स्वर्ग प्राप्त नहीं होता परन्तु एक प्रजा की रक्षा करने से ही स्वर्ग की प्राप्ति होती है ॥९॥ ब्रह्मचारी स्नान मौन और नित्य अग्नि की सेवा करने से ही स्वर्ग को नहीं जाता परन्तु एकमात्र गुरु की सेवा करने से ही स्वर्ग को जाता है ॥ १० ॥ वानप्रस्थ अग्नि की सेवा करने से या क्षमा से तथा अनेक प्रकार के स्नान करने से स्वर्ग को नहीं जाता केवल एक भोजन के त्याग

करने से ही स्वर्ग को जाता है ॥ ११ ॥ संन्यासी दण्ड मौन और शून्य स्थान में रह कर ही सिद्धि को प्राप्त नहीं होता परन्तु योग से ही सर्वोत्तम गति को प्राप्त होता है ॥ १२ ॥ गृहस्थी दक्षिणावाली यज्ञों की और अग्नि की सेवा करने से स्वर्ग को नहीं जाता केवल एक अतिथि के पूजन से ही स्वर्ग प्राप्त होता है ॥ १३ ॥ इस कारण गृहस्थी को यत्न पूर्वक अतिथि को भोजन और शय्या आदि से पूजा करनी उचित है ॥ १४ ॥

गृहस्थस्तु यदा पश्येद्वलीपलितमात्मनः ।
अपत्यस्यैव चापत्यं तदारण्यं समाश्रयेत् ॥१॥

शंख स्मृतिः ऽध्यायः ६

अर्थ—गृहस्थी मनुष्य जिस समय देखे कि शरीर का मांस सूख गया है अर्थात् बुढ़ापा आ गया है और पौत्र को देखले तब वानप्रस्थ आश्रम को ग्रहण करने के निमित्त वन को चला जाय ॥ १ ॥

कृत्वेष्टिं विधिवत्पश्चात्सर्ववेदसदक्षिणाम् ।
आत्मन्यग्नीन्समारोप्य द्विजो ब्रह्माश्रमी भवेत् ॥१॥

शंख स्मृतिः ऽध्यायः ७

अर्थ-इसके उपरान्त सर्ववेद संदक्षिणा नामक इष्टि करके अपनी देह तथा अपनी आत्मा में ही अग्नि को मान कर ब्राह्मण संन्यास आश्रम को ग्रहण करे ॥ १ ॥

विधूमेन्यस्तमुसले व्यंगारे भुक्तवज्जने ।
अतीते पात्रसंपाते नित्यं भिक्षां यतिश्चरेत् ॥
सप्तागारांश्चरेद्भैक्ष्यं भिक्षितं नानुभिक्षयेत् ॥२॥

न व्यथेच्च तथाऽलाभे यथा लब्धेन वर्तयेत् ।
न स्वादयेत्तथैवान्नं नाश्नीयात्कस्यचिद्गृहे ॥३॥

शङ्खस्मृतिः अध्यायः ७

अर्थ—जिस समय ग्रामवासी मनुष्य भोजन कर चुके हों धुआं न उठता हो मूसलभी चावल निकाल कर यथा स्थान पर रख दिये हों और रसोई वा जल के पात्रों का इधर उधर लेना भी बन्द हो गया हो उस समय सन्यासी भिक्षाके लिये जाय सात घरों से भिक्षा मांगे एकदिन जिन घरोंमें से भिक्षा मांगी हो फिर दूसरे दिन उनसे भिक्षा न मांगे॥२॥ यति भिक्षा के न मिलने से दुःखी न हो जो कुछ मिल जाय उस से ही जीविका निर्वाह करे अन्न को स्वादिष्ठ न करे और ना ही किसी के घर में भोजन करे ॥ ३ ॥

मृन्मयालाबुपात्राणि यतीनां च विनिर्दिशेत् ।
तेषां संमार्ज्जनाच्छुद्धिरद्भिश्चैव प्रकीर्तिता ॥४॥
कौपीनाच्छादनं वासो बिभृयादव्यथश्चरन् ।
शून्यागारनिकेतः स्याद्यत्र सायंगृहो मुनिः ॥५॥
दृष्टिपूतं न्यसेत्पादं वस्त्रपूतं जलं पिबेत् ।
सत्यपूतां वदेद्वाचं मनः पूतं समाचरेत् ॥६॥
सर्वभूतसमो मैत्रः समलोष्टाश्मकांचनः ।
ध्यानयोगरतो भिक्षुः प्राप्नोति परमांगतिम् ॥७॥
जन्मनायस्तु निर्मुक्तो मरणेन तथैव च ।
आधिभिर्व्याधिभिश्चैव तं देवा ब्राह्मणं विदुः ॥८॥
अशुचित्वं शरीरस्य प्रियाप्रिय विपर्ययः ।

गर्भवासे च वसते तस्मान्मुच्येत नान्यथा ॥९॥
जगदेतन्निराक्रंदं निःसारकमनर्थकम् ।
भोक्तव्यमिति निर्दिष्टो मुच्यते नात्र संशयः ॥१०॥
प्राणायामैर्देहेद्दोपान्धारणाभिश्च किल्बिषम् ।
प्रत्याहारेण संसर्गान्ध्यानेनानीश्वरान्गुणान् ॥११॥
मनसः संयमस्तज्ज्ञैर्धारणेति निगद्यते ।
संहारश्चेन्द्रियाणी च प्रत्याहारः प्रकीर्तितः ॥१२॥
हृदिस्थध्यानयोगेन देवदेवस्य दर्शनम् ।
ध्यानं प्रोक्तं प्रवक्ष्यामि ध्यानयोगमतः परम् ॥१४॥

शङ्खस्मृतिः अध्यायः ७

यतिके लिये मिट्टी और तूम्बेके पात्र कहे गये हैं यह जल से मांजने से ही शुद्ध हो जाते हैं ॥ ४ ॥ और दुःख से रहित संन्यासी वन में निवास करता हुआ कौपीन और गुदड़ी के ही वस्त्रों को पहरे शून्य स्थान में निवास करे जहां संध्या हो जाय वहीं घर मान कर मौन हो निवास करे ॥५॥ भली भांति चारों ओर को देखकर पैर रक्खे और वस्त्रों से छान कर जल पीवे सत्यवचन बोले और मनसे पवित्र आचरण करे ॥ ६ ॥ सम्पूर्ण प्राणियों को समान दृष्टिसे देखे सबका मित्र बना रहे और सुवर्ण पत्थर ढेला इनको भी एकसाही समझे ध्यान और योग में रत रहे ऐसे आचरण करने वाला भिक्षुक परमगति को प्राप्त होता है ॥ ७ ॥ जो शरीर जन्म मरण वा मनकी पीड़ा और देह के रोग से छूट जाय देवता उसी को ब्राह्मण शरीर कहते हैं ॥ ८ ॥ शरीरकी अशुद्धता से प्रियके स्थान पर अप्रिय और अप्रियके स्थान पर प्रिय हो जाता है और गर्भमें निवास

होता है इन सब क्लेशों से ब्राह्मण जन्म के विना नहीं छूटता ॥६॥ यह संसार बड़ा भयंकर है सार रहित और अनर्थरूप है इस में जो आये हैं उन को अवश्य ही भोगना पड़ेगा जो अपनी बुद्धिसे इसको भोगता है उसकी मुक्ति होजाती है इस में सन्देह नहीं ॥ १० ॥ प्राणायाम से दोषों को और धारणाओं से सम्पूर्ण पापों को भस्म करदे प्रत्याहार से संगों को और ध्यान से अज्ञान आदि गुणों को दग्ध करदे ॥ ११ ॥ धारणा के जानने वाले मनके रोकने को धारणा कहते हैं इन्द्रियोंके विषयोंसे हटानेको प्रत्याहार कहते हैं ॥१३॥ और योगाभ्यास से हृदय में स्थित देवदेव परमात्मा का जो दर्शन है इस को ध्यान कहते हैं इसके उपरान्त ध्यान योग को कहता हूं ॥१४॥

वालागशतशो भागः कल्पितस्तु सहस्रधा ।
तस्यापि शतमाद्भागाज्जीवः सूक्ष्म उदाहृतः ॥३२॥

शङ्खस्मृतिः अध्यायः ७

अर्थ—वाल (केश) के अग्रभागके सहस्र टुकड़े किये जायें उनमें से एक टुकड़ेका जो शतवां भाग है उस से भी जीव सूक्ष्म है ॥ ३२ ॥

वहूनां प्रोक्षणाच्छुद्धिर्धान्यादीनां विनिर्दिशेत् ।
प्रोक्षणात्संहतानां च दारावाणाञ्च तक्षणात् ॥६॥

शङ्खस्मृतिः अध्यायः १६

अर्थ—वहुत से अन्नोंकी तथा दले हुए अन्न और काष्ठके पात्रों की शुद्धि जलके छिड़कने से होती है ॥ ६ ॥

कृत्वा पापं न गूहेत गूह्मानं विवर्द्धते ।
कृत्वा पापं वुधः कुर्यात्पर्षदानुमतं व्रतम् ॥६२॥

शङ्खस्मृतिः अध्यायः १७

अर्थ—पाप करके उसे न छिपावे कारण कि छिपाने से पाप की वृद्धि होती है बुद्धिमान् मनुष्य पाप करके सभा की अनुमति से प्रायश्चित्त करे ॥ ६२ ॥

द्वादशाहोपवासेन पराकः परिकीर्तितः ॥५॥

शङ्खस्मृतिः अध्यायः १८

अर्थ—और बारह दिन तक उपवास करने का नाम पराक व्रत है ॥ ५ ॥

व्रतं तु वार्द्धिकं कुर्यात्सर्वपापापनुत्तये ॥११॥
ग्रासं चन्द्रकला वृद्धया प्राश्नीयाद्वर्द्धयन्सदा ।
ह्रासयेच्च कलाहानौ व्रतं चान्द्रायणं स्मृतम् ॥१२॥

शङ्खस्मृतिः अध्यायः १८

अर्थ—सम्पूर्ण पापों के नाश करनेवाले इस वार्द्धिक व्रत को करे उसी को चान्द्रायण व्रत भी कहते हैं उसका लक्षण यह है ॥ ११ ॥ चन्द्रमा की कला की भान्ति वृद्धि के अनुसार एकग्रास प्रतिदिन खावे और कला की हानि के अनुसार एक एक ग्रास प्रतिदिन घटाता जाय यह चान्द्रायण व्रत है ॥१२॥

पूरणे कूपवापीनां वृक्षच्छेदनपातने ।
विक्रीणीतगजं चाश्वं गोवधं तस्य निर्दिशेत् ॥७७॥

लिखित स्मृतिः

अर्थ—जो मनुष्य कुए या बावडी को पाट दे वृक्षों को काट डाले हाथी या घोड़े को बेचता रहे उस को गो वध का प्रायश्चित्त करना उचित है ॥७७॥

गृहस्थोपि क्रियायुक्तो गृहेण न गृही भवेत् ।

नचैव पुत्रदारेण स्वकर्म परिवर्जितः ॥५१॥

दक्ष स्मृतिः ऽध्यायः २

अर्थ—कर्म में परायण गृहस्थी घर में रहने से ही गृहस्थी नहीं होता अर्थात् घर उस का बन्धन नहीं है और जो गृहस्थी अपने कर्म से हीन है वह स्त्री पुत्र से गृहस्थी नहीं होता अर्थात् पुत्र इत्यादि उस के नरक में सहायक नहीं होते ॥ ५१ ॥

विभागशीलो यो नित्यं क्षमायुक्तो दयालुकः।
देवतातिथि भक्तश्च गृहस्थः स तु धार्मिकः ॥५४॥
दया लज्जा क्षमा श्रद्धा प्रज्ञा त्यागः कृतज्ञता।
गुणा यस्य भवंत्येते गृहस्थो मुख्य एव सः ॥५५॥

दक्ष स्मृतिः ऽध्यायः २

अर्थ—जिसका स्वभाव बांट कर खाने का है जिस में क्षमा और दया है वा जो देवता और अतिथियों का भक्त है वह गृहस्थी ही धार्मिक है ॥ ५४ ॥ दया लज्जा क्षमा श्रद्धा बुद्धि त्याग कृतज्ञता इतने गुण जिस में विद्यमान हों वही यथार्थ गृहस्थी है ॥ ५५ ॥

पैशुन्यमनृतं माया कामः क्रोधस्तथा ऽप्रियम्।
द्वेषो दंभः परद्रोहः प्रच्छन्नानि तथा नव ॥१३॥
आयुर्वित्तं गृहच्छिद्रं मंत्रो मैथुन भेषजे।
तपोदानापमानौ च नव गोप्यानि सर्वदा ॥१४॥

दक्ष स्मृतिः ऽध्यायः ३

अर्थ—और चुग़ली झूठ माया काम क्रोध अप्रिय द्वेष दंभ दूसरों से द्रोह यह भी नौ विकर्म ही हैं इन सब को भी

त्याग दे ६ प्रच्छन्न ये हैं कि ॥ १३ ॥ अवस्था, धन, घर का छिद्र, मन्त्र, मैथुन, भेषज, तप, दान, अपमान यह नौ सर्वदा छिपाने योग्य हैं ॥ १४ ॥

माता पित्रोर्गुरौ मित्रे विनीते चोपकारिणि ।
दीनानाथ विशिष्टेषु दत्तं तत्सफलं भवेत् ॥१६॥

दक्ष स्मृतिः ऽध्यायः ३

अर्थ—माता पिता गुरु मित्र नम्र उपकारी दीन अनाथ सज्जन इन को देना सफल है ॥ १६ ॥

यथैवात्मा परस्तद्वद्द्रष्टव्यः सुखमिच्छता ।
सुखदुःखानि तुल्यानि यथात्मनि तथापरे ॥२१॥
सुखं वा यदि वा दुःखं यत्किंचित्क्रियते परे ।
यत्कृतं तु पुनः पश्चात्सर्वमात्मनि तद्भवेत् ॥२२॥

दक्ष स्मृतिः ऽध्यायः ३

अर्थ—जो मनुष्य अपने सुख की अभिलाषा करता है वह अपने ही समान दूसरे को भी देखे कारण कि जिस भांति सुख दुःख अपने को होता है उसी भांति दूसरे को भी होता है ॥ २१ ॥ जो सुख दुःख दूसरे के लिए किया जाता है वह सब अपनी आत्मा में ही आकर प्राप्त होता है ॥२२॥

न क्लेशेन विना द्रव्यं विना द्रव्येण न क्रिया ।
क्रियाहीने न धर्मः स्याद्धर्महीने कुतः सुखम् ॥२३॥
सुखं वांछंति सर्वे हि तच्च धर्मसमुद्भवम् ।
तस्माद्धर्मः सदा कार्यः सर्ववर्णैः प्रयत्नतः ॥२४॥

दक्ष स्मृतिः ऽध्यायः ३

अर्थ—और क्लेश के विना पाए धन नहीं मिलता और विना धन के कर्म नहीं होता कर्महीन मनुष्य से धर्म नहीं बनता धर्महीन को सुख नहीं मिलता ॥२३॥ सुख की अभिलाषा सभी करते हैं और वह सुख धर्म से ही मिलता है इस कारण सम्पूर्ण वर्णों को यत्न सहित धर्म करना उचित है ॥ २४ ॥

न्यायागतेन द्रव्येण कर्तव्यं पारलौकिकम् ।
दानं हि विधिना देयं काले पात्रे गुणान्विते ॥२५॥
समद्विगुण साहस्रमानन्त्यं च यथाक्रमम् ।
दाने फलविशेषः स्याद्धिंसायां तावदेव तु ॥२६॥

दक्ष स्मृतिः ऽध्यायः ३

अर्थ—और जो धन न्याय से प्राप्त हुआ है उस धन से परलोक के कर्म करने उचित हैं और उत्तम अवसर में विधि सहित सुपात्र को दान दे ॥२५॥ उस दान का फल क्रमानुसार सम दूना सहस्र गुना और अनन्त इस भांति विशेष रीति से होता है और उतना ही हिंसा में पाप की वृद्धि जान लेना ॥ २६ ॥

प्रहृष्टमानसा नित्यं स्थानमानविचक्षणा ।
भर्तुः प्रीतिकरी यातु भार्या स चेतरा जरा ॥१३॥

दक्ष स्मृतिः ऽध्यायः ४

अर्थ—जो स्त्रियें सर्वदा प्रसन्न चित्त रहती हैं स्थान और मान की ज्ञाता स्वामी में प्रीति करने वाली गृहोपकरण द्रव्यों में अवस्थान और परिमाण विषय में अभिज्ञ वह स्त्री ही स्त्री कहने के योग्य है और जिस में यह गुण न हों वह

केवल शरीर को क्षय करने वाली जरास्वरूप है ॥१३॥

शिष्यो भार्या शिशुर्भ्राता पुत्रो दासः समाश्रितः ।
यस्यैतानि विनीतानि तस्य लोके हि गौरवम् ॥१४॥

दक्ष स्मृतिः ऽध्यायः ४

अर्थ—जिस गृहस्थ के शिष्य स्त्री बालक भाई मित्र दास और आश्रित नियम सहित चलते हैं उसका संसार में गौरव होता है ॥ १४ ॥

प्रथमा धर्मपत्नी तु द्वितीया रतिवर्द्धिनी
दृष्टमेव फलं तत्र नादृष्टमुपपद्यते ॥१५॥

दक्षस्मृतिः ऽध्यायः ४

अर्थ—पहली विवाही हुई स्त्री धर्मपत्नी है दूसरी विवाहिता स्त्री केवल रति बढ़ाने के निमित्त है उस स्त्री का फल केवल इस लोक में ही है परलोक में नहीं ॥१५॥

दरिद्रं व्याधितं चैव भर्तारं यावमन्यते ।
शुनी गृध्री च मकरी जायते सा पुनः पुनः ॥१८॥

दक्ष स्मृतिः ऽध्यायः ४

अर्थ—जो स्त्री दरिद्र वा रोगी पति का तिरस्कार करती है वह स्त्री कुतिया गीधनी मकरी वारम्बार होती है ॥१८॥

अशौचाद्धि वरं बाह्यं तस्मादाभ्यंतरं वरम् ।
उभाभ्यां तु शुचिर्यस्तु स शुचिर्नेतरः शुचिः ॥४॥

दक्ष स्मृतिः ऽध्यायः ५

अर्थ—अशौच में बाह्य शौच श्रेष्ठ है और बाह्य शौच से आन्तरिक शौच श्रेष्ठ है जो इन दोनों से शुद्ध है वही शुद्ध है दूसरा नहीं ॥४॥

मृत्तिकानां सहस्रेण चोदकुंभशतेन च।
न शुद्ध्यंति दुरात्मानो येषां भावो न निर्मलः ॥१०॥

दक्ष स्मृतिः ऽध्यायः ५

अर्थ—जिन पुरुषों का अन्तःकरण शुद्ध नहीं है वह दुष्टात्मा हजार वार मट्टी से वा सौ घड़े जल से भी शुद्ध नहीं हो सकते ॥ १० ॥

नारण्यसेवनाद्योगो नानेकग्रंथचिंतनात्।
व्रतैर्यज्ञैस्तपोभिर्वा न योगः कस्य चिद्भवेत् ॥४॥
नच पथ्याशनाद्योगो न नासाग्रनिरीक्षणात्।
नच शास्त्रातिरिक्तेन शौचेन भवति क्वचित् ॥५॥
न मंत्रमौन कुहकैरनेकैः सुकृतैस्तथा।
लोकयात्रा नियुक्तस्य योगो भवति कस्यचित् ॥६॥
अभियोगात्तथाभ्यासात्तस्मिन्नेव तु निश्चयात्।
पुनःपुनश्च निर्वेदाद्योगः सिद्ध्यति नान्यथा ॥७॥
आत्मचिंता विनोदेन शौचेन क्रीडनेन च।
सर्वभूतसमत्वेन योगः सिद्ध्यति नान्यथा ॥८॥
यश्चात्मनिरतो नित्यमात्मक्रीडस्तथैव च।
आत्मानंदस्तु सततमात्मन्येव सुभावितः ॥९॥
रतश्चैव सुतुष्टश्च संतुष्टोनान्यमानसः।
आत्मन्येव सुतृप्तोऽसौ योगस्तस्य प्रसिद्ध्यति ॥१०॥
सुप्तोऽपि योगयुक्तश्च जाग्रच्चापि विशेषतः।
ईदृकचेष्टः स्मृतः श्रेष्ठो गरिष्ठो ब्रह्मवादिनाम् ॥११॥

अत्रात्मव्यतिरेकेण द्वितीयं नैव पश्यति।
ब्रह्मभूतः स एवेह दक्षपक्ष उदाहृतः ॥१२॥
विषयासक्तचित्तो हि यतिर्मोक्षं न विंदति।
यत्नेन विषयासक्तिं तस्माद्योगी विवर्जयेत् ॥१३॥
विषयेंद्रिय संयोगं केचिद्योगं वदंति वै।
अधर्मो धर्मबुद्ध्या तु गृहीतस्तैर पंडितैः ॥१४॥
आत्मनो मनसश्चैव संयोगं तु ततःपरम्।
उक्तानामधिकाह्येते केवलं योगवंचिताः ॥१५॥
वृत्तिहीनं मनः कृत्वा क्षेत्रज्ञं परमात्मनि।
एकीकृत्य विमुच्येत योगोऽयं मुख्यउच्यते ॥१६॥
कषाय मोह विक्षेपलज्जा शंकादिचेतसः।
व्यापारास्तु समाख्यातास्ताञ्जित्वा वशमानयेत् ॥१७॥
कुटुम्बैः पंचभिर्ग्रामः षष्ठस्तत्रमहत्तरः।
देवासुरैर्मनुष्यैश्चसजेतुं नैव शक्यते ॥१८॥
बलेन परराष्ट्राणि गृह्णञ्शूरस्तु नोच्यते।
जितो येनन्द्रियग्रामः स शूरः कथ्यते बुधैः ॥१९॥
बहिर्मुखानि सर्वाणि कृत्वा चाभिमुखानि वै।
मनस्येवेंद्रियाण्यत्र मनश्चात्मनियोजयेत् ॥२०॥
सर्वभावविनिर्मुक्तं क्षेत्रज्ञं ब्रह्मणिन्यसेत्।
एतद्ध्यानं तथा ज्ञानं शेषस्तु ग्रंथविस्तरः ॥२१॥

दक्षस्मृतिः ऽध्यायः ७

अर्थ—वनमें निवास अनेक ग्रन्थों का विचार मत यत

और तप इनसे किसी को योग प्राप्त नहीं होता ॥ ४ ॥ पथ्य भोजन नाक के अग्रभाग का देखना शास्त्रों की अधिकता और शौच इनसे भी योग नहीं होता ॥ ५ ॥ मंत्र मौन कपट अनेक प्रकार के पुण्य और लोक के व्यवहार में तत्पर इनसे भी योग नहीं होता ॥ ६ ॥ अभियोग अभ्यास योग में ही निश्चय से और वारंवार निर्वेद विरक्ति से योग सिद्ध होता है ॥ ७ ॥ आत्मा की चिन्ता के आनंद से शौच आत्मा में क्रीडा सब भूतों में समता इनके द्वारा योग सिद्ध होता है इसके अतिरिक्त नहीं ॥ ८ ॥ सर्वदा आत्मामें मिलना आत्मामें क्रीडाशील आत्मामें आनंद स्वभाव और निरन्तर आत्मामें प्रीतिमान् ॥ ९ ॥ आत्मा में रमा आत्मा में सन्तुष्ट जिसका मन अन्यत्र न हो और जो भली भांति से आत्मा में तृप्त हो उसी पुरुष को योग सिद्ध होता है ॥ १० ॥ योगी सोता हुआ भी जागते के समान है जिसकी ऐसी चेष्टा हो वही श्रेष्ठ और ब्रह्मवादियों में बड़ा कहा गया है ॥ ११ ॥ इस संसार में आत्मा के विना जो दूसरे को न देखे वही ब्रह्मरूप है यह दक्ष ऋषि के पक्ष में कहा है ॥ १२ ॥ जिसका चित्त विषय में आसक्त हो वह यती मोक्ष को प्राप्त नहीं होता इस कारण योगी विषय की ओर से अपना मन हटाले ॥ १३ ॥ कोई मनुष्य विषय और इन्द्रियों के संयोग को योग कहते हैं उन निर्बुद्धियों ने अधर्म को धर्म बुद्धि से जाना है ॥ १४ ॥ उनसे अन्य कोई आत्मा और मनके संयोग को योग कहते हैं यह योग पूर्वोक्त ठगों से भी अधिक हैं ॥ १५ ॥ सब वृत्तियों से मन को हटाकर और जीव को परमात्मा में लगाने से मुक्त हो जाता है यही योग मुख्य है ॥ १६ ॥ कषाय मोह और विक्षेप का जो नाश है उसका वही व्यापार कहा है जिसका मन वश में हो जाय इस कारण कषाय आदि से रहित मन

को अपने वश में करे ॥ १७ ॥ पांच कुटुम्बियों का ग्राम होता है और उस ग्राम में छठा (मन) सबसे बड़ा है उसको जीतने को देवता मनुष्य असुर यह कोई भी समर्थ नहीं होता है ॥ १८ ॥ जो बल पूर्वक दूसरेके देशों को छीन लेता है वह शूर नहीं कहाता परन्तु वास्तव में वही शूर है जिसने इन्द्रिय रूपी ग्राम को जीत लिया हो ॥ १६ ॥ सर्व बहिर्मुख इन्द्रियों को अंतर्मुख करे फिर उन इन्द्रियों को मन में युक्त करे मनको आत्मामें योजित करे ॥ २० ॥ और सब भावों से रहित क्षेत्रज्ञ को ब्रह्म में मिलावे इसी का नाम ध्यान और ज्ञान है शेष तो सब ग्रन्थ का विस्तार ही है ॥ २१ ॥

तस्मात्त्यक्तकषायेण कर्तव्यं दण्डधारणम् ।
इतरस्तु न शक्नोति विषयैरभिभूयते ॥२६॥
न स्थिरं क्षणमप्येकमुदकं हि यथोर्मिभिः ।
वाताहतं तथा चित्तं तस्मात्तस्य न विश्वसेत् ॥३०॥

दक्षस्मृतिः अध्यायः ७

अर्थ—इस कारण जिसने मनके मैलका त्याग करदिया हो वही दंड को धारण करे और जिस ने त्याग न किया हो उस को दंड धारण करने की सामर्थ्य नहीं है और विषय उसका तिरस्कार करते हैं ॥ २६ ॥ जिस भान्ति तरङ्गों के कारण जल क्षणमात्र को भी स्थिर नहीं रहता इसी भान्ति वासनाओं से रहता हुआ चित्त भी स्थिर नहीं रह सकता इस कारण उस का विश्वास न करे ॥ ३० ॥

त्रिदंड व्यपदेशेन जीवन्ति बहवो नराः ।
यस्तु ब्रह्म न जानाति न त्रिदंडी हि स स्मृतः ॥३१॥

नाध्येतव्यं न वक्तव्यं श्रोतव्यं न कथंचन ।
एतैः सर्वैः सुसंपन्नो यतिर्भवति नेतरः ॥२४॥
पारिव्राज्यं गृहीत्वा तु यः स्वधर्मे न तिष्ठति ।
श्वपदेनांकयित्वा तं राजा शीघ्रं प्रवासयेत् ॥२५॥

दक्षस्मृतिः अध्यायः ७

अर्थ—त्रिदंड के वहाने से वहुत से मनुष्य जीवन धारण करते हैं परन्तु जो ब्रह्म को नहीं जानता वह त्रिदंडी नहीं कहाता ॥ २३ ॥ न पढना न बोलना न किसी प्रकार सुनना जो इन सब गुणोंसे युक्त हो वही संन्यासी है दूसरा नहीं ॥२४॥ जो संन्यास लेकर अपने धर्ममें स्थिर न रहे उसको राजा अपने नगर से कुत्तेके पैरका दाग देकर निकाल दे ॥ २५ ॥

यस्मिन्देशे भवेद्योगी ध्यानयोगविचक्षणः ।
सोपि देशो भवेत्पूतः किं पुनर्यस्य बांधवः ॥४१॥

दक्षस्मृतिः अध्यायः ७

अर्थ—ध्यान और योग में पण्डित जिस देश में निवास करता है वह देश भी पवित्र हो जाता है फिर उस के बन्धु बांधव क्यों न होंगे ॥ ४१ ॥

संचितं यद् गृहस्थेन पापमामरणांतिकम् ।
स निर्दहति तत्सर्वमेकरात्रोपितो यतिः ॥४७॥

दक्षस्मृतिः अध्यायः ७

अर्थ—गृहस्थीने अपने शरीर में जो पाप संचय किये हैं यति उसके घर में एक रात्रि निवास कर उसके सम्पूर्ण पापों का नष्ट कर देता है ॥ ४७ ॥

वर्जयेन्मधुमांसगन्धमाल्यादि वा समांजनाभ्यंजन-

यानोपानच्छत्रकामक्रोधलोभमोहवाद्यवादनस्नानदंतधावन-हर्षनृत्यगीतपरिवादभयानि ।

गौतमस्मृति अध्याय २

अर्थ—ब्रह्मचारी मधु मांस गन्ध फूलमाला दिन में शयन अंजन उबटना सवारी जूता छत्री काम क्रोध लोभ मोह बाजा बजाना अधिक[1] स्नान दतोन हर्ष नृत्य गाना निन्दा मदिरा और भय इन सब को त्याग दे ॥

गन्धरसकृतान्नतिलशणक्षौमाजिनानि रक्तनिर्णिक्ते-वाससीक्षीरं च सविकारं मूलफलपुष्पौषधमधुमांसतृणो-दकापथ्यानि पशवश्च हिंसा संयोगे पुरुषवशा कुमारी वेह-तश्च नित्यं भूमिव्रीहियवाजाव्यश्वर्षभधेन्वनडुहश्चैके विनि-मयस्तु रसानां रसै पशूनां च न लवणाकृतान्नयोस्तिलानां च समेनामेन तु

गौतमस्मृति अध्याय ७

अर्थ—परन्तु ब्राह्मण, गन्ध, रस, पक्का अन्न, तिल, सन, मृगचर्म, रंगेवस्त्र, दूध, दूधके विकार, मूल, फल, फूल, औषधि शहत, मांस, तृण, जल, अपथ्यवस्तु, हिंसा के संयोग में पशु, पुरुष वांझ स्त्री; कुमारी; जिसका गर्भ गिरजाता हो, भूमि,

---

१ मूलमें ब्रह्मचारीके लिये स्नानका निषेध किया गया है किन्तु भाषाकार ने अधिक शब्द 'अधिक' साथ जोड़ दिया है, इससे भली भान्ति सिद्ध होता है कि वैदिक धर्म का तत्व भाष्य आदि कर्ताओं ने पक्षपात के वशीभूत होकर प्रायः नष्ट ही कर दिया क्योंकि किसीने मूल बिगाडा और किसी ने अनुवाद बिगाड़ दिया क्या यह उन लोगों के लिये लज्जा की बात नहीं है ? ।

धान, जौ, वकरी, भेड इनको कदापि न वेचे, और कोई २ ऐसा भी कहते हैं कि औषधि गौ वैल इनका भी वेचना उचित नहीं एक प्रकारके रसके साथ दूसरे प्रकारके रसका वदला न करे पशुके साथ पशुका वदला न करे लवणके साथ लवणका, पक्के अन्न के साथ पक्के अन्नका और तिलों से तिलका भी वदला न करे ।

अथ चतुःषष्टिषु यातनास्थानेषु दुःखान्यनुभूय तत्रेमानि लक्षणानि भवंति ब्रह्महार्द्रकुष्ठी सुरापः श्यावदन्तः गुरुतल्पगः पंगुः स्वर्णहारी कुनखी श्वित्री वस्त्रापहारी हिरण्यहारी दर्दुरी तेजोपहारी मण्डली स्नेहापहारी क्षयी तथा अजीर्णवानन्नापहारी ज्ञानापहारी मूकः प्रतिहंता गुरोरपस्मारी गोघ्नो जात्यंधः पिशुनः पूतिनासः पूतिवक्रस्तु सूचकः शूद्रोपाध्यायः श्वपाकस्त्रयपुसीसचामर विक्रयी मद्यप एकशफविक्रयी मृगव्याधः कुंडाशीमृतकचैलिको वा नक्षत्री चार्बुदी नास्तिको रंगोपजीव्य भक्ष्यभक्षी गंडरी ब्रह्मपुरुषतस्कराणां देशिकः पिंडितः षंढो महापथिको गंडिकश्चांडाली पुष्कसी, गोष्वकीर्णी मध्वामेही धर्मपत्नीषु स्यान्मैथुनप्रवर्त्तकः खल्वाटः सगोत्रासमयस्त्र्यभिगामी श्लीपदी पितृमातृभगिनीस्त्र्यभिगाम्यनिर्जितस्तेषां कुब्जकुंडपंडव्याधीतव्यंगदरिद्राल्पायुषोऽल्पबुद्धिः

चंडपंड शैलूषतस्करपरपुरुषप्रेष्यपरकर्म्मकराः खल्वाटवक्रांगसंकीर्णाः क्रूरकर्म्माणः क्रमशश्चांत्याश्चोपपद्यन्ते

तस्मात्कर्तव्यमेवेह प्रायश्चित्तं विशुद्धैर्लक्षणैर्जायन्ते धर्म्मस्य धारणादिति ॥

गौतम स्मृतिः अध्यायः २० ।

अर्थ—सम्पूर्ण पापी चौंसठ नरक के स्थानों में दुःख भोग कर मनुष्य लोक में पूर्वोक्त पापों से चिह्न युक्त हो जन्म लेते हैं ब्रह्महत्या करने वाले के गीला कुष्ट होता है मदिरा पीने वाले के दांत काले होते हैं गुरु की शय्या पर गमन करने वाला लंगड़ा होता है सुवर्ण की चोरी करने वाले के नख बुरे होते हैं वस्त्रों का चुराने वाला दाद युक्त होता है सोने का चोर मेंडक होता है तेज का चोर चकत्ते रोग से युक्त होता है घी की चोरी करने वाला क्षयी होता है अन्न की चोरी करने वाला अजीर्ण रोग से युक्त होता है ज्ञान की चोरी करने वाला गूंगा, गुरु का मारने वाला मिरगी रोग से युक्त होता है । गौ की हत्या करने वाला जन्मान्ध होता है सूचक की नाक और मुख में सर्वदा दुर्गन्धि आती रहती है, शूद्र का पढ़ाने वाला चण्डाल, रांग, सीसा, चंवर इनका वेचने वाला, मद्यप, एक शफ पशुओं को वेचने वाला, मृगव्याध, कुंडाशी, भृत्य वा धोबी और विना शास्त्र के जाने नक्षत्रों को बताने वाला, अर्बुद रोगी, नास्तिक, रंगरेज, भक्षण करने अयोग्य का भक्षण करने वाला गंडमाल का रोगी होता है; ब्राह्मण, कठोर तस्कर, इनका जो गुरु हो, नपुंसक, रात दिन रास्ता चलने वाला गंडमाल का रोगी और चाण्डाली, (भंगन) इनके साथ रमण करने वाला प्रमेह रोग से युक्त होता है, पतिव्रता दूसरे की स्त्री में मैथुन की इच्छा करने वाला गंजा, अपने गोत्र की स्त्री में गमन करने वाला और अपनी स्त्री के साथ कुसमय में गमन करने वाला श्लीपदी होता है, पिता और माता की

बहन और पिता की अन्य स्त्री में वीर्य डालने वाला कुबड़ा. मूत्र कृच्छ्री तथा अंगहीन, दरिद्री और अल्पबुद्धि होता है, तथा क्रोधी, नपुंसक, नट, चोर, पराये भृत्य और टहलुए. खल्वाट. गंजे, कुबड़े, वर्ण संकर और क्रूर कर्म करने वाले होते हैं, क्रमानुसार अन्त्यज भी होते हैं इस कारण मनुष्य योनि में पाप का प्रायश्चित्त अवश्य करना चाहिए. कारण कि धर्म के धारण करने से निर्मल चिह्न वाले मनुष्य उत्पन्न होते हैं।

व्याघ्रेण हन्यते जन्तुः कुमारीगमनेन च ।
त्रिपदश्चैव सर्पेण गजेन नृपदुष्टकृत् ॥ ९ ॥
राज्ञा राजकुमारघ्नश्चौरेण पशुहिंसकः ।
वैरिणा मित्रभेदी च वकवृत्तिर्वृकेण तु ॥ १० ॥
गुरुघाती च शय्यायां मत्सरी शौच वर्जितः ।
द्रोही संस्काररहितः शुना निक्षेपहारकः ॥ ११ ॥
नरो विहन्यतेऽरण्ये शूकरेण च पाशिकः ।
कृमिभिः कृतत्रासश्च कृमिणा च निकृन्तनः ॥१२॥
शृंगिणा शंकरद्रोही शकटेन च सूचकः ।
भृगुणा मेदिनीचौरो वह्निना यज्ञहानिकृत् ॥ १३ ॥
दवेन दक्षिणाचौरः शस्त्रेण श्रुतिनिन्दकः ।
अश्मना द्विजनिन्दाकृद्विषेण कुमतिप्रदः ॥ १४ ॥
उद्बंधनेन हिंसः स्यात्सेतुभेदी जलेनतु ।
द्रुमेण राजदन्तिहृदतिसारेण लोहहृत् ॥ १५ ॥
डाकिन्याद्यैश्च म्रियते स दर्पकार्यकारकः ।

अनध्यायेऽप्यधीयानो म्रियते विद्युता तथा ॥ १६ ॥
अस्पृश्यस्पर्शसंगी च शान्तमाश्रित्य शास्त्रहृत्।
पतितो मद्यविक्रेताऽनपत्यो द्विजवस्त्रहृत् ॥ १८ ॥

शातातप स्मृतिः अध्यायः ६।

अर्थ—जो मनुष्य कुमारी कन्या में गमन करता है वह सिंह से मारा जाता है, जो मनुष्य किसी को विष देता है वह सर्प के आघात से हत होता है, और राजा के पुत्र को मारने वाला तथा राजा के साथ दुष्टता करने वाला हाथी से मरता है ॥ ९ ॥ जो राजपुत्र को मारता है वह राजदंड से मरता है, पशु की हिंसा करने वाला चोर से मारा जाता है, और मित्रों का भेद करने वाला शत्रु के हाथ से मारा जाता है. जिसकी वकवृत्ति है उस की मृत्यु वृक से होती है ॥ १० ॥ गुरु की हत्या करने वाला शय्या पर मरता है, मात्सर्य युक्त मनुष्य शौचरहित हो कर मरता है दूसरे का अपकार करने वाला मनुष्य दाहादि संस्कार से हीन होकर मरता है, और धरोहर का चुराने वाला कुत्ते के काटने से मरता है ॥ ११ ॥ फांसी वाला मनुष्य वन में शूकर से मरता है, और वस्त्रों का चुराने वाला कीडों से, और छेदन करने वाला भी कीड़ों से मरता है ॥ १२ ॥ शिवजी के साथ द्रोह करने वाला सींग वाले पशुओं से मरता है, चुगली करने वाला मनुष्य गाड़ी से, पृथ्वी का चोर बड़ी शिला से और यज्ञ में हानि करने वाला अग्नि से मरता है ॥१३॥ दक्षिणा का चोर वन की अग्नि से, वेदों की निन्दा करने वाला शस्त्र से, ब्राह्मणों का निन्दक पत्थर से और कुबुद्धि का देने वाला विष से मरता है ॥१४॥ हिंसा करने वाला मनुष्य फांसी से मृतक होता है, पुल को तोड़ने वाला जल से, राजा के हाथी को चुराने वाला

वृत्त से और लोहे का चुराने वाला अतिसार से मरता है ॥१५॥ अहंकार से कार्य करने वाला शाकिनी आदि से और अनध्याय में पढ़ने वाला बिजली से मरता है ॥ १६ ॥ अयोग्य का स्पर्श करने वाला, और शास्त्र को चुराने वाला यह दोनों वमन रोग से मरते हैं, मदिरा का वेचने वाला पतित होता है, ब्राह्मण के वस्त्रों का चोर सन्तान हीन होता है ॥१७॥

अथाप्युदाहरंति ॥

सद्यः पतति मांसेन लाक्षया लवणेन च ।

त्र्यहेण शूद्रो भवति ब्राह्मणः क्षीरविक्रयात् ॥

वशिष्ठ स्मृतिः ऽध्यायः २

अर्थ—इस में भी यह वचन कहते हैं कि मांस, लाख, लवण इन के वेचने से ब्राह्मण शीघ्र पतित होता है और दूध के वेचने से तीन दिन में पतित होता है ।

ग्राम्यपशूनामेकशफाः केशिनश्च सर्वे चारण्याः पशवो वयांसि दंष्ट्रिणश्च । धान्यानां तिलानाहुः ॥

अर्थ—ग्राम के पशुओं के बीच में एक खुर के पशु और केशों वाले पशु तथा वन के सब पशु पक्षी और डाढ़ वाले पशु अन्नों में तिल यह सब वेचने के अयोग्य कहे हैं ।

अद्भिर्गात्राणि शुद्ध्यंति मनः सत्येन शुद्ध्यति ॥ विद्यातपोभ्यां भूतात्मा बुद्धिर्ज्ञानेन शुद्ध्यति ॥ अद्भिरेव कांचनं पूयेत तथा राजतम् ॥

वशिष्ठ स्मृतिः ऽध्यायः ३

अर्थ—जल से शरीर की शुद्धि होती है, सत्य से मन की शुद्धि है विद्या और तपस्या के द्वारा भूतात्मा की शुद्धि होती

है ज्ञान के उदय से बुद्धि निर्मल होती है सुवर्ण और चांदी के पात्र की शुद्धि जल से होती है।

पिता रक्षति कौमारे भर्ता रक्षति यौवने ।
पुत्राश्च स्थाविरे भावे न स्त्री स्वातंत्र्यमर्हति ॥

वशिष्ठ स्मृतिः अध्यायः ५

अर्थ—बाल्यावस्था में पिता रक्षा करता है, यौवनावस्था में पति रक्षा करता है, और वृद्धावस्था में स्त्री की रक्षा करने वाला पुत्र है स्त्री कभी स्वाधीन नहीं हो सकती।

आचारः परमो धर्मः सर्वेषामिति निश्चयः ।
हीनाचारपरीतात्मा प्रेत्य चेह च नश्यति ॥१॥
नैनंप्रयाति न ब्रह्म नाग्निहोत्रं न दक्षिणा ।
हीनाचाराश्रितं भ्रष्टं तारयंति कथंचन ॥२॥

आचारहीनं न पुनंति वेदा यद्यप्यधीताः सहषड्भिरंगैः ।
छंदांस्येनं मृत्युकाले त्यजंति नीडं शकुंता इवजातपक्षाः ॥३॥

आचारहीनस्य तु ब्राह्मणस्य
वेदाः षडंगा अखिलाः सपक्षाः ।
कां प्रीतिमुत्थापयितुं समर्था
अंधस्य दारा इव दर्शनीयाः ॥४॥

नैनं छंदांसि वृजिनात्तारयंति मायाविनं मायया वर्त्तमानम् ।
तत्राचरे सम्यगधीयमाने पुनाति तद्ब्रह्मयथावदिष्टम् ॥५॥

दुराचारो हि पुरुषो लोके भवति निंदितः ।
दुःखभागी च सततं व्याधितोल्पायुरेव च ॥६॥

आचारात्फलते धर्ममाचारात्फलते धनम् ।
आचाराच्छ्रियमाप्नोति आचारो हंत्यलक्षणम् ॥७॥
सर्वलक्षणहीनोपि यः सदाचारवान्नर ।
श्रद्धधानोनसूयश्च शतं वर्षाणि जीवति ॥८॥

वशिष्ठ स्मृतिः ऽध्यायः ६

अर्थ—यह निश्चय है कि आचार ही सब का परम धर्म है आचार भ्रष्ट मनुष्य इस लोक और परलोक में नष्ट होता है जो मनुष्य आचार से रहित और भ्रष्ट हैं उनको तपस्या वेदाध्ययन अग्निहोत्र और दक्षिणा यह किसी प्रकार भी उद्धार नहीं कर सकते, यदि छैहों (६) अंगों सहित वेद को पढ़ता हुआ मनुष्य आचारहीन होने के कारण किसी प्रकार शुद्ध नहीं हो सकता जिस प्रकार अग्नि से तपाये हुए घोंसले को पक्षी त्याग देते हैं उसी प्रकार आचार से हीन ब्राह्मण को मृत्यु के समय में वेद त्याग देते हैं आचार से हीन मनुष्य को सांगोपांग वेद और छैहों अंग किस प्रीति को उत्पन्न करने में समर्थ हैं जिस भांति अंधे को सुन्दर स्त्री, और माया से वर्त्तमान और मायावी मनुष्य को दुःख से वेद उस का उद्धार नहीं कर सकते परन्तु भली भांति से पढ़ा हुआ एक अक्षर भी वेद का मनुष्य को पवित्र करने वाला है दुराचारी मनुष्य लोक में निन्दित और सर्वदा दुःख का भागी है। वह रोगग्रस्त और अल्पायु होता है, आचार का फल धर्म है, आचार का फल धन है, आचार से सम्पत्ति की प्राप्ति होती है, आचार दुष्ट लक्षणों का नाश करता है जो मनुष्य सम्पूर्ण लक्षणों से हीन होकर भी केवल एक सदाचार के करने वाला है, श्रद्धालु और निन्दारहित वह मनुष्य सौ

वर्ष तक जीता है।

आहारनिर्हारविहारयोगः सुसंवृता धर्मविदा तु कार्याः।
वाग्बुद्धिवीर्याणि तपस्तथैव धनायुषी गुप्ततमे तु कार्ये ॥९॥

वशिष्ठ स्मृतिः अध्यायः ६

अर्थ—धर्मज्ञ मनुष्य, भोजन, गमन, क्रीडा, वाणी, बुद्धि, वीर्य, तप और काम इनको गुप्त भाव से करे।

अष्टौ ग्रासा मुनेर्भक्तं वानप्रस्थस्य षोडश ॥
द्वात्रिंशच्च गृहस्थस्य अमितं ब्रह्मचारिणः ॥१८॥
अनड्वान्ब्रह्मचारी च आहिताग्निश्च ते त्रयः।
भुंजाना एव सिद्ध्यंति नैषां सिद्धिरनश्नताम् ॥१९॥
तपोदानोपहारेषु व्रतेषु नियमेषु च।
इज्याध्ययन धर्मेषु यो नासक्तः स निष्क्रियः ॥२०॥

वशिष्ठ स्मृतिः अध्यायः ६

अर्थ—आठ ग्रास यति का भोजन है सोलह ग्रास वानप्रस्थ का भोजन है बत्तीस ग्रास गृहस्थी का भोजन है, ब्रह्मचारी के भोजन का नियम नहीं है, बैल ब्रह्मचारी और वानप्रस्थ यह तीनों भोजन से ही सिद्धि को प्राप्त होते हैं।

और भोजन करने वाले इनकी सिद्धि नहीं है, तप, दान, व्रत, उपहार, नियम, यज्ञ, पढ़ना, धर्म जो इनमें आसक्त न हो वह निष्क्रिय है।

असूयकः पिशुनश्चैव कृतघ्नो दीर्घरोषकः।
चत्वारः कर्मचांडाला जन्मतश्चापिपंचमः ॥२३॥
दीर्घवैरमसूयां च असत्यं ब्रह्मदूषणम्।

पैशुन्यं निर्दयत्वं च जानीयाच्छूद्रलक्षणम् ॥२४॥

वशिष्ठस्मृतिःऽध्यायः ६

अर्थ—निंदक, चुगल, कृतघ्नी, क्रोधी, यह चारों जन कर्म से चांडाल हैं, और इसके अतिरिक्त पांचवां जाति चांडाल है, अधिक वैर, निन्दा, झूठ, ब्राह्मण को दोष लगाना चुगलपन, निर्दयता यह सब लक्षण शूद्र के जानने।

परिव्राजकः सर्वभूताभयदक्षिणां दत्त्वा प्रतिष्ठेत् ।
अथाप्युदाहरंति ।
अभयंसर्वभूतेभ्यो दत्त्वा चरति यो द्विजः ॥
तस्यापि सर्वभूतेभ्यो न भयं जातु विद्यते ।
अभयं सर्वभूतेभ्यो दत्त्वा यस्तु निवर्तते ।
हंति जातानजातांश्च प्रतिगृह्णातियस्य च ।
संन्यसेत्सर्वकर्माणि वेदमेकं न संन्यसेत् ।
वेदसंन्यासतः शूद्रस्तस्माद्वेदं न संन्यसेत् ।
एकाक्षरं परंब्रह्म प्राणायामः परं तपः ।
उपवासात्परं भैक्ष्यं दयादानाद्विशिष्यते ।

वशिष्ठस्मृतिःऽध्याय १०

अर्थ—संन्यासी सम्पूर्ण प्राणियों को अभय देकर प्रस्थान करे, इस विषय में पंडितों ने कहा है, कि जो ब्राह्मण सम्पूर्ण प्राणियों को अभय देकर विचरण करता है, उसे कभी किसी प्राणी से भय नहीं होता, सम्पूर्ण प्राणियों को अभय देकर जो स्थिति करता है उसे किसी प्राणी के निकट भय नहीं रहता; और जो ऐसा संन्यासी जिस गृहस्थी से कुछ भी प्रतिग्रह करता है वह उस गृहस्थी के जात और अजात

तथा पिछले और अगले सम्पूर्ण पापों को नष्ट करता है, एक अक्षर (ॐ) ही श्रेष्ठ वेद है और प्राणायाम परम तप है, उपवास करने से भिक्षा का अन्न श्रेष्ठ है, दान की अपेक्षा दया प्रधान है।

अथाप्युदाहरंति। अरण्यनित्यस्य जितेंद्रियस्य सर्वेन्द्रियप्रीतिनिवर्तकस्य ॥ अध्यात्मचिंतागतमानसस्य ध्रुवा ह्यनावृत्तिरुपेक्षकस्य ॥ अव्यक्तलिंगोऽव्यक्ता चारः अनुन्मत्त उन्मत्तवेषः ॥ वशिष्ठस्मृतिःऽध्यायः १०

अर्थ—इसमें यह भी वचन है कि वनमें नित्य निवास करे, जितेन्द्रिय होकर रहे, जिस संन्यासी को इन्द्रियों से प्रीति न हो और जिसका मन आत्मा की चिन्ता में लगा रहे, उसे जन्म मरण का अभाव है, जिसके चिह्न प्रगट न हों और आचरण प्रगट हों, और जो उन्मत्त न हो, जिसका वेष उन्मत्त की समान हो।

अथाप्युदाहरंति। न शब्दशास्त्राभिरतस्य मोक्षो न चापि लोकग्रहणे रतस्य। न भोजनाच्छादनतत्परस्य नचापिरम्यावसथप्रियस्य। न चोत्पातनिमित्ताभ्यां न नक्षत्रांगविद्यया। अनुशासनवादाभ्यां भिक्षां लिप्सेत कर्हिचित्।

अलाभे न विषादी स्याल्लाभेचैव न हर्षयेत्।
प्राणयात्रिकमात्रः स्यान्मात्रासंगाद्विनिर्गतः ॥
न कुट्यां नोदके संगेन चैले न त्रिपुष्करे।
नागारे नासने शेते यः सर्वेमोक्षवित्तमः ॥

वशिष्ठ स्मृतिः ऽध्यायः १०

अर्थ—और यह भी कहा है कि, जो केवल वाक्पांडित्य में तत्पर है (स्वयंस्वविहित क्रिया को नहीं करता), जो लौकिक व्यवहार में ही तत्पर रहता है (पारमार्थिक ईश्वर प्रणिधानादि नहीं करता), जो केवल खान पान वस्त्रपात्रादिकों में ही आसक्त रहता है और उत्तम मठ मन्दिर और सुन्दर ग्राम आदिकों में ही तत्पर रहता है उस संन्यासी का मोक्ष नहीं होता है संन्यासी ने लौकिक व्यवहार से उपजीविका सम्पादन करने के लिए दिव्य भौम और अंतरिक्ष वृष्टि विद्युत् तेजी मंदी वगैरह बातें तथा नक्षत्र विद्या ज्योतिष शास्त्रानुसार तिथि नक्षत्र जन्मपत्रिका आदिकों के फल वैद्यकीय औषधियों से चिकित्सा धर्मशास्त्रादिके अनुसार विधि और प्रायश्चितादिकों का कथन किसी का कथन सुनके अपना भी अनुवाद करके कहना ऐसी वृत्ति रखके भिक्षा मिलाने की इच्छा करना भिक्षा नहीं मिले तो खेद न करे भिक्षा मिल जाय तो हर्ष भी न करे केवल प्राणयात्रा जितने अन्नादि से हो सके उतने से निर्वाह करले इन्द्रियों के विषयों में आसक्त न रहे जो संन्यासी कुटी में उदकमें दूसरे के संग में वस्त्र के ऊपर त्रिपुष्कर में घर में आसन के ऊपर शयन नहीं करता वह मोक्ष का तत्त्व जानने वाला तत्त्वज्ञ मोक्षगामी पुरुष है।

पंचकन्यानृते हंति दश हंति गवानृते ।
शतमश्वानृते हंति सहस्रं पुरुषानृते ॥
व्यवहारेमृतेदारेप्रायश्चित्तेकुले स्त्रियः ।
तेषां पूर्वपरिच्छेदाच्छेद्यंते नागमादिभिः ॥

वशिष्ठ स्मृतिः ऽध्यायः १६

अर्थ—कन्या के निमित्त जो असत्य कहता है उसके पांच पुरुष नरक को जाते हैं, गौ के निमित्त मिथ्या कहने पर दश पुरुष नरक को जाते हैं अश्वके निमित्त असत्य बोलने पर एक सौ पुरुष नरक को जाते हैं और पुरुष के निमित्त मिथ्या बोलने पर सहस्र पुरुष नरक को जाते हैं व्यवहारमें, मरणमें, वैवाहिक विधि में प्रायश्चित्त में और (?) स्त्री के कुल के विषय में (?) मिथ्या साक्षी देने वालों के पूर्व के सम्बन्ध (?) छूट जाते हैं।

अथाप्युदाहरंति।

अन्नादे भ्रूणहामार्ष्टि पत्यौ भार्यापचारिणी।
गुरौ शिष्यश्च याज्यश्च स्तेनो राजनि किल्बिषम्॥
राजभिर्धृतदंडास्तु कृत्वापापानि मानवाः।
निर्मलाः स्वर्गमायांति संतः सुकृतिनोयथा॥
एनो राजानमृच्छत्यप्युत्सृजंतं सकिल्बिषम्।
तं चेन्न घातयेद्राजा राजधर्मेण दुष्यति॥ इति॥

वशिष्ठस्मृतिः अध्यायः १६

अर्थ—यहां यह भी वचन है, कि भ्रूणहत्या करने वाला अन्न के भोक्ता को, व्यभिचारिणी स्त्री पति को, शिष्य और याज्य गुरु को और चोर राजा को अपना पाप देते हैं, यह पाप करने वाले राजा के दंड देने से शुद्ध होते हैं और शुद्ध होकर स्वर्ग में इस भांति जाते हैं जिस भांति पुण्यात्मा पापियों को छोड़ने से पाप राजा को लगता है यदि राजा पापी का वध न करे तो राजधर्म दूषित होता है।

अष्टादशस्मृतयः समाप्ताः॥

नमस्यामो देवान्ननु हतविधेस्तेऽपि वशगा ।
विधिर्वन्द्यः सोऽपि प्रतिनियतकर्मैकफलदः ॥
फलं कर्मायत्तं यदि किमपरैः किं च विधिना ।
नमस्तत्कर्मेभ्यो विधिरपि न येभ्यः प्रभवति ॥ १०८ ॥
ब्रह्मायेन कुलालवन्नियमितो ब्रह्माण्डभाण्डोदरे ।
विष्णुर्येन दशावतारगहने क्षिप्तो महासङ्कटे ॥
रुद्रो येन कपालपाणिपुटके भिक्षाटनं सेवते ।
सूर्योभ्राम्यतिनित्यमेव गगनेतस्मै नमः कर्मणे ॥ १०९ ॥

भर्तृहरिशतक—नीतिशतकम् ।

अर्थ—देवताओं को हम नमस्कार करते हैं परन्तु उनको विधाता के वश में देखते हैं, इस लिये विधाता को नमस्कार करते हैं, पर विधाता भी हमारे पूर्व निश्चित कर्म के अनुसार फल देता है, फिर जब फल और विधाता दोनों कर्म क आधीन हैं तो देवता और विधाता से क्या काम है ? इस कारण कर्म ही को नमस्कार है क्योंकि, विधाता का भी सामर्थ्य जिस पर नहीं चलता ॥ १०८ ॥ जिस कर्म ने ब्रह्मा को कुम्हार के समान निरन्तर ब्रह्मांड रचना के हेतु बनाया और विष्णु को बारम्बार दश अवतार ग्रहण करने के संकट में डाला और रुद्र को कपाल हाथ में लेकर भिक्षा मांगने के कष्ट में रक्खा और सूर्य को आकाश में नित्य भ्रमण चक्र में डाला उस कर्म को प्रणाम है ॥ १०९ ॥

न कर्तृत्वं न कर्माणि लोकस्य सृजति प्रभुः ।
न कर्मफलसंयोगं स्वभावस्तु प्रवर्तते ॥ १४ ॥
नादत्ते कस्यचित्पापं न चैव सुकृतं विभुः ।

अज्ञानेनावृतं ज्ञानं तेन मुह्यन्ति जंतवः ॥ १५ ॥

गीता —— अध्याय ५ ।

अर्थ—अर्थात् आत्मा या परमेश्वर लोगों के कर्तृत्व को उनके कर्म को (या उनको प्राप्त होने वाले) कर्म फल के संयोग को भी निर्माण नहीं करता। स्वभाव अर्थात् प्रकृति ही (सब कुछ) किया करती है ॥ १४ ॥ विभु अर्थात् सर्व व्यापी आत्मा या परमेश्वर किसी का पाप और किसी का पुण्य भी नहीं लेता। ज्ञान पर अज्ञान का पर्दा पड़ा रहने के कारण (अर्थात् माया से) प्राणी मोहित हो जाते हैं ॥१५॥

तपः परं कृतयुगे त्रेतायां ज्ञानमुच्यते ।
द्वापरे यज्ञमेवाहु दानमेकं कलौयुगे ॥ ८६ ॥

मनुस्मृतिःऽध्यायः-प्रथमः

अर्थ—यद्यपि तप आदि सब शुभ कर्म सब युगों में करने योग्य हैं तिस पर भी सत्ययुग में तप मुख्य था अर्थात् बड़े फल का देने वाला था ऐसे ही त्रेता में आत्मा का ज्ञान और द्वापर में यज्ञ और कलियुग में दान ही एक बड़ा फल देने वाला है ॥ ८६ ॥

आचाराद्विच्युतो विप्रो न वेदफलमश्नुते ।
आचारेण तु संयुक्तः सम्पूर्णफल भाग्भवत् ॥१०६॥
एवमाचारतो दृष्ट्वा धर्मस्यमुनयोगतिम् ।
सर्वस्य तपसो मूलमाचारं जगृहुः परम् ॥ ११० ॥

मनुस्मृतिः अध्याय प्रथमः

अर्थ—आचार से रहित ब्राह्मण वेद के फल को नहीं प्राप्त कर सकता है और आचार युक्त सम्पूर्ण फल का पाने वाला होता है ॥ १०६ ॥ इस कहे हुए प्रकार से आचार के द्वारा ऋषियों

ने धर्म की प्राप्ति को जान कर सम्पूर्ण जो चांद्रायण आदि तप हैं उनके मूल रूप आचार को ग्रहण किया ॥ ११० ॥

समाहृत्यतु तद्भैक्ष्यं यावदर्थममायया ।
निवेद्य गुरवेऽश्नीयादाचम्य प्राङ्मुखः शुचिः ॥५१॥
आयुष्यं प्राङ्मुखो भुंक्ते यशस्यं दक्षिणामुखः ।
श्रियं प्रत्यङ्मुखो भुंक्ते ऋतं भुंक्ते ह्युदङ्मुखः ॥ ५२ ॥

मनुस्मृतिः अध्याय द्वितीयः

अर्थ—तृप्ति के योग्य उस भिक्षा को वहुतों से लाकर गुरु को निवेदन कर कपट रहित हो पूर्व को मुख करके आचमन करके भोजन करे ॥ ५१ ॥ अत्र काम्य भोजन कहते हैं आयुष्य की इच्छा हो तो पूर्व को मुख करके, यश की इच्छा हो तो दक्षिण को मुख करके भोजन करे लक्ष्मी की इच्छा हो तो पश्चिम को मुख करके और सत्य की इच्छा हो तो उत्तर को मुख करके भोजन करे ॥ ५२ ॥

हिमवद्विन्ध्ययोर्मध्यं यत्प्राग्विनशनादपि ।
प्रत्यगेव प्रयागाच्चमध्यदेशः प्रकीर्तितः ॥ २१ ॥
आसमुद्रात्तु वै पूर्वादा समुद्रात्तु पश्चिमात् ।
तयोरेवान्तरं गिर्योरार्यावर्तं विदुर्बुधाः ॥ २२ ॥

मनुस्मृतिः अध्याय द्वितीयः

अर्थ—उत्तर और दक्षिण दिशाओं में स्थित हिमाचल विन्ध्याचल पर्वतों का मध्य और विनशन नाम सरस्वती नदी के गुप्त होने का स्थान है उस से जो पूर्व और प्रयाग से जो पश्चिम है उस देश का नाम मध्यदेश है ॥ २१ ॥ पूर्व के समुद्र से और पश्चिम के समुद्र से उन्हीं दोनों अर्थात् हिमाचल विन्ध्याचल पर्वतों के वीच के भूमि भाग को पण्डित आर्यावर्त

कहते हैं इस मे समुद्र के मध्य के द्वीप आर्यावर्त में नहीं है यह निश्चित हुआ ॥ २२ ॥

अनारोग्यमनायुष्यमस्वर्ग्यं चातिभोजनम् ।
अपुण्यं लोकविद्विष्टं तस्मात्तत्परिवर्जयेत् ॥ ५७ ॥
मनुस्मृतिः अध्याय द्वितीयः ।

अर्थ—अति भोजन में दोष कहते हैं अति भोजन आरोग्य और आयुष्य को नाश करने वाला है और स्वर्ग के कारणभूत यज्ञादिकों का विरोधी होने से स्वर्ग का भी नाश करने वाला है अपवित्र और लोक में निन्दित है तिससे उस अति भोजन का त्याग कर अर्थात् बहुत कभी न खाय ॥ ५७ ॥

इन्द्रियाणां प्रसंगेन दोषमृच्छत्य संशयम् ।
संनियम्य तु तान्येव ततः सिद्धिं नियच्छति ॥९३॥
न जातु कामः कामानामुपभोगेन शाम्यति ।
हविषा कृष्णवर्त्मेव भूय एवाभिवर्द्धते ॥ ९४ ॥
मनुस्मृतिः अध्याय द्वितीयः

अर्थ—इन्द्रियों के विषयों में लगने से निस्सन्देह दृष्ट अदृष्ट दोष को प्राप्त होता है फिर उन्हीं इन्द्रियों को भली भांति रोक कर सिद्धिं अर्थात् मोक्ष आदि पुरुषार्थ की योग्यता को प्राप्त होता है तिससे इन्द्रियों को रोके ॥ ९३ ॥ काम जो अभिलाषा है और काम जो विषय हैं तिनके भोग से कभी नहीं शान्त होता है घी के डालने से अग्नि के समान पुनः अधिक बढ़ता है ॥ ९४ ॥

न तथैतानि शक्यन्ते संनियन्तुमसेवया ।
विषयेषु प्रजुष्टानि यथा ज्ञानेन नित्यशः ॥ ९६ ॥
वेदास्त्यागश्च यज्ञाश्च नियमाश्च तपांसि च ।

न विप्रदुष्टभावस्य सिद्धिं गच्छन्ति कर्हिचित् ॥९७॥

मनुस्मृतिः अध्याय द्वितीयः

अर्थ—अब इन्द्रियों के संयम का उपाय कहते हैं विषयों में लगी हुई इन्द्रियें उन विषयों के छोड़ने से रोकने को समर्थ नहीं हैं जितनी सदा ज्ञान से रुक जाती हैं॥ ९६ ॥ वेद अथवा दान यज्ञ नियम और तप माला आदि विषयों को सेवा वाले पुरुष को कभी सिद्धि के लिये नहीं होते ॥ ९७ ॥

श्रुत्वा स्पृष्ट्वा च दृष्ट्वा च भुक्त्वा घ्रात्वा च यो नरः ।
न हृष्यति ग्लायति वा स विज्ञेयो जितेन्द्रियः ॥९८॥

मनुस्मृतिः अध्याय द्वितीयः

अर्थ—स्तुति का वचन तथा निन्दा का वचन सुनकर और छूने में सुख देने वाले वस्त्र आदि तथा छूने में दुःख देने वाले मेढ़ों के बालों के कंबल आदि को छूकर और कुरूप सरूप को देख और स्वादयुक्त तथा विना स्वाद की वस्तु को खाकर और सुगन्धि तथा विना सुगन्ध की वस्तु को सूंघकर जिसको हर्ष विषाद नहीं होता उसे जितेन्द्रिय जानना चाहिये ॥ ९८ ॥

पूर्वां संध्यां जपंस्तिष्ठन्नेशमेनो व्यपोहति ।
पश्चिमां तु समासीनो मलं हन्तिदिवाकृतम् ॥१०२॥
न तिष्ठति तु यः पूर्वां नोपास्ते यश्च पश्चिमाम् ।
स शूद्रवद्बहिष्कार्यः सर्वस्मान्निजकर्मणः ॥१०३॥

मनुस्मृतिः अध्याय २

अर्थ—प्रातःकाल की संध्या में स्थित जप करता हुआ रात्रिके पाप को दूर करता है और सायंकाल की संध्या में स्थित जप करता हुआ दिन में किये हुए पाप को दूर करता

है ॥१०८॥ जो प्रातःकालकी सन्ध्या नहीं करता और पिछली अर्थात् सायंकालकी सन्ध्या की उपासना नहीं करता अर्थात् उस काल में कहे हुए जप आदि को नहीं करता है वह शूद्र के समान सब ब्राह्मण के कर्म और अतिमनस्कार से बाहर करने योग्य है ॥ ॥

आचार्यपुत्रः शुश्रूषुर्ज्ञानदो धार्मिकः शुचिः ।
आप्तः शक्तोऽर्थदः साधुः स्वोऽध्याप्यादशधर्मतः ॥१०९॥
नापृष्टः कस्यचिद् ब्रूयान्न चान्यायेन पृच्छतः ।
जानन्नपि हि मेधावी जडवल्लोक आचरेत् ॥११०॥

मनुस्मृतिः अ. २

अर्थ—कैसा शिष्य पढ़ाना चाहिये सो कहते हैं । आचार्य का पुत्र १ सेवा करने वाला २ दूसरे प्रकार के ज्ञान देनेवाला ३ धर्म का जानने वाला ४ मृत्तिका तथा जल आदि से शुद्ध ५ बांधव ६ लेने देने में समर्थ ७ धन देनेवाला ८ द्रोह न करने वाला ९ ज्ञाति का १० ये दशप्रकार के शिष्य पढ़ाने योग्य हैं ॥ १०९ ॥ जो किसी ने थोड़े अक्षरों में अथवा विना स्वरके पढ़ा हो उस को अर्थ विना पूछे उसके तत्त्व न प्रकाशित करे और शिष्य से तो विना पूछे भी कहे और भक्ति श्रद्धा आदि जो पूछने के धर्म हैं तिन को छोड़ कर पूछे ऐसे के पूछने पर भी न कहे बुद्धिमान् पुरुष जानता हुआ भी लोक में गूंगे के समान रहे ॥ ११० ॥

धर्मार्थौ यत्र न स्यातां शुश्रूषा वापि तद्विधा ।
तत्र विद्या न वक्तव्या शुभं बीजमिवोषरे ॥११२॥
विद्ययैव समं कामं मर्त्तव्यं ब्रह्मवादिना ।

आपद्यपि हि घोरायां न त्वेनामिरिणे वपेत् ॥११३॥
विद्या ब्राह्मणमेत्याह शेवधिस्तेऽस्मि रक्ष माम् ।
असूयकाय मां मादास्तथा स्यां वीर्यवत्तमा ॥ ११४ ॥
यमेव तु शुचिं विद्यान्नियतं ब्रह्मचारिणम् ।
तस्मै मां ब्रूहि विप्राय निधिपायाप्रमादिने ॥११५॥

मनुस्मृतिः अ० २

अर्थ—जिस शिष्य के पढ़ाने में धर्म अर्थ न हो अथवा पढ़ने के अनुरूप सेवा न हो वहां विद्या न देनी चाहिये वह देना ऐसे निष्फल है जैसे ऊपरमें बोया हुआ धान आदि बीज नहीं उगता ॥ ११२ ॥ वेद पढ़ाने वाले को विद्या के साथ ही मरना अच्छा, सब भान्ति पढ़ाने के योग्य शिष्य को न होने रूप आपत्ति में भी इस विद्या को ऊपर में न बोवे ॥ ११३ ॥ विद्या की अधिष्ठाता देवी किसी अध्यापक के समीप आके ऐसे बोली कि मैं तुम्हारी निधि हूँ मेरी रक्षा करो और असूया आदि दोषवाले मनुष्यको मुझे मत दे सत्यकी अधिकता से मैं वीर्यवती होऊं ॥ ११४ ॥ जिस शिष्य को शुद्ध जितेन्द्रिय और ब्रह्मचारी जानते हो उस विद्यारूपी निधिके रक्षा करने वाले प्रमाद रहित को मुझे दे ॥ ११५ ॥

शय्यासनेऽध्याचरिते श्रेयसा न समाविशेत् ।
शय्यासनस्थश्चैवेनं प्रत्युत्थायाभिवादयेत् ॥११६॥

मनुस्मृतिः अ० २

अर्थ—विद्या आदि में अधिक अथवा गुरु करके मुख्यता से अङ्गीकार की हुई शय्या अथवा आसन पर न बैठे और आप जो शय्या अथवा आसन पर बैठा हो तो गुरु के आने पर उठ कर नमस्कार करे ॥ ११६ ॥

अभिवादनशीलस्य नित्यं वृद्धोपसेविनः ।
चत्वारि तस्य वर्धन्ते आयुर्विद्यायशोबलम् ॥१२१॥

मनुस्मृतिः अ० २

अर्थ—उठ कर सदा वृद्ध को नमस्कार करने वाले और वृद्ध की सेवा करने वाले मनुष्य को आयु विद्या यश और बल ये चारों बढ़ाते हैं ॥ १२१ ॥

मातृष्वसा मातुलानीश्वश्रूरथपितृष्वसा ।
संपूज्या गुरुपत्नी वत्समास्ता गुरुभार्यया ॥१३१॥

मनुस्मृतिः अ० २

अर्थ—मावसी मामी सास बुआ ये सब गुरु की स्त्री के समान उत्थान अभिवादन आसन देने आदि से पूजने योग्य हैं क्योंकि ये गुरु भार्या के समान हैं ॥ १३१ ॥

पितुर्भगिन्यां मातुश्च ज्यायस्यां च स्वसर्यपि ।
मातृवद्वृत्तिमातिष्ठेन्माता ताभ्योगरीयसी ॥१३३॥

मनु० अ० २

अर्थ—पिता की बहिन तथा माता की और अपनी बड़ी बहिन इन सब का आदर मान माता के समान करे परन्तु माता इन सब से बहुत ही अधिक है ॥ १३३ ॥

न हायनैर्न पलितैर्न वित्तेन न बन्धुभिः ।
ऋषयश्चक्रिरे धर्मं योऽनूचानः सनो महान् ॥१५४॥

मनु० अ० २

अर्थ—न बहुत वर्षों से और न सफेद दाढ़ी मूछों से न बहुत धन से न चचा ताऊ आदि बहुत से भाईयों से अथवा कठे हुए भी इन सबों से बड़ापन नहीं होता है ।

किन्तु ऋषियों ने धर्म किया है कि जो हम लोगोंमें अंगों समेत वेद का पढ़ने वाला है वही बड़ा है ॥ १५४ ॥

न तेन वृद्धो भवति येनास्य पलितं शिरः ।
यो वै युवाप्यधीयानस्तं देवाः स्थविरं विदुः ॥१५६॥
यथा काष्ठमयो हस्ती यथा चर्ममयो मृगः ।
यश्चविप्रोऽनधीयानस्त्रस्ते नाम बिभ्रति ॥१५७॥
यथापण्ढोऽफलः स्त्रीषु यथा गौर्गविचाफला ।
यथा चाज्ञेऽफलं दानं तथा विप्रोऽनृचोऽफलः ॥१५८॥
अहिंसयैव भूतानां कार्यं श्रेयोऽनुशासनम् ।
वाक्चैव मधुराश्लक्ष्णा प्रयोज्या धैर्यमिच्छता ॥१५९॥
यस्य वाङ्मनसे शुद्धे सम्यग्गुप्ते च सर्वदा ।
सवैं सर्वमवाप्नोति वेदान्तोपगतं फलम् ॥ १६० ॥
नारुंतुदः स्यादार्त्तोऽपि न परद्रोह कर्मधीः ।
ययास्योद्विजते वाचा नालोक्यां तामुदीरयेत् ॥ १६१ ॥

मनुस्मृतिः अध्याय द्वितीयः

अर्थ—शिर के बाल सफेद होने से वृद्ध नहीं होता है जो जवान भी पढ़ा लिखा हो तो उस को वृद्ध कहते हैं ॥१५६॥ जैसे काठ का बना हुआ हाथी और जैसे चमड़े का बना हुआ मृग और बिना पढ़ा हुआ ब्राह्मण ये तीनों केवल नाम को धारण करते हैं हाथी आदि शत्रु वध आदिकों के काम को नहीं कर सकते हैं ॥ १५७ ॥ जैसे नपुंसक स्त्रियों में निष्फल होता है और गौवों में गौ और जैसे मूर्ख में दान निष्फल होता है तैसे श्रौतस्मार्त्तकर्मों में अयोग्य होने से बिना पढ़ा ब्राह्मण निष्फल होता है ॥ १५८ ॥ शिष्यों को अति हिंसा के

विना ही कल्याण देने वाले अर्थ की शिक्षा करनी चाहिए और धर्म बुद्धि की इच्छा करने वाले पुरुष को मधुर एवं प्रीति उत्पन्न करने वाली वाणी मन्दस्वर से कहनी चाहिए ॥ १५६ ॥ जिसके वाणी और मन दोनों शुद्ध होते हैं और वाणी मिथ्या आदि से दूषित नहीं होती और मन राग द्वेष आदि से दूषित नहीं होता है अर्थात् जिसके वाणी और मन निषिद्ध विषयों से भली भांति बचे रहते हैं वह वेदान्त के सम्पूर्ण मोक्षरूप यथार्थ फल को प्राप्त होता है ॥ १६० ॥ पीड़ित होने पर भी किसी से मर्म भेदी दुःख देने वाले वचन न कहे और दूसरे के द्रोह की बुद्धि न करे इस की जिस वाणी से दूसरे का मन दुःखी हो ऐसी अनालोक्या अर्थात् स्वर्ग आदि लोकों की प्राप्ति से विरुद्ध वाणी को न कहे ॥ १६१ ॥

सुखं ह्यवमतः शेते सुखं च प्रतिबुध्यते ।
सुखं चरति लोकेऽस्मिन्नवमन्ता विनश्यति ॥ १६२ ॥

मनुस्मृतिः अध्याय २

अर्थ—दूसरे से अपमान किया हुआ पुरुष सुख से सोता है और सुख से जागता है और सुख से इस लोक में विचरता है और अपमान करने वाला उस पाप से नाश को प्राप्त होता है ॥ १६३ ॥

वर्जयेन्मधुमांसं च गन्धं माल्यं रसांस्त्रियः ।
शुक्तानि यानि सर्वाणि प्राणिनां चैव हिंसनम् ॥१७७॥
अभ्यङ्गमञ्जनं चाक्ष्णोरुपानच्छत्रधारणम् ।
कामं क्रोधं च लोभं च नर्त्तनं गीतवादनम् ॥ १७८ ॥
द्यूतं च जनवादं च परीवादं तथानृतम् ।

स्त्रीणां च प्रेक्षणालम्भमुपघातं परस्य च ॥ १७९ ॥
एकः शयीत सर्वत्र न रेतः स्कन्दयेत्क्वचित् ।
कामाद्धि स्कन्दयन् रेतो हिनस्ति व्रतमात्मनः ॥१८०॥

मनुस्मृतिः अध्याय २

अर्थ—शहद और मांस का ब्रह्मचारी त्याग करे और गंध अर्थात् कपूर, चन्दन, कस्तूरी आदि को न खाए न देह में लगावे, फूलों की माला न पहिरे, गुड आदि जो रस हैं उन को न खाय, स्त्री गमन न करे और शुक्त कहिये सिरका आदि न खाय और जीव हिंसा न करे, ब्रह्मचारी को ये सब वर्जित हैं ॥ १७७ ॥ तेल आदि का लगाना, आंखों को आंजना, जूता और छाते का धारण करना और काम, क्रोध, लोभ, गाना, बजाना इन सबों को ब्रह्मचारी वर्जित करे ॥ १७८ ॥ द्यूत अर्थात् पासों से खेलना और वाद अर्थात् विना प्रयोजन लोगों से झगड़ा करना, पराये दोष का कहना, झूठ बोलना और मैथुन की इच्छा से स्त्रियों को देखना अथवा आलिंगन करना और पराया अपकार इन सब का त्याग करे ॥ १७९ ॥ सदा अकेला सोवे, इच्छा से वीर्य को न गिरावे, इच्छा से वीर्य को गिराता हुआ ब्रह्मचारी अपने व्रत का नाश करता है ॥१८०॥

भैक्षेण वर्तयेन्नित्यं नैकान्नादी भवेद्व्रती ।
भैक्षेण व्रतिनो वृत्तिरुपवाससमा स्मृता ॥ १८८ ॥

मनुस्मृतिः अध्याय २

अर्थ—ब्रह्मचारी एक का अन्न न खाय किंतु बहुत घरों से लाये हुए भिक्षा के समूह से जीवे जिससे भिक्षा के समूह से ब्रह्मचारी की जीविका मुनियों ने उपवास के तुल्य कही है ॥ १८८ ॥

चोदितो गुरुणा नित्यमप्रचोदित एव वा ।
कुर्यादध्ययने यत्नमाचार्यस्य हितेषु च ॥१६१॥

मनुस्मृतिः अध्यायः २

अर्थ—आचार्य के कहने से अथवा न कहने से आप ही प्रतिदिन पठन में और गुरु के हितकारी कामों में उद्योग करे ॥ १६१ ॥

हीनान्नवस्त्रवेषः स्यात्सर्वदा गुरुसंनिधौ ।
उत्तिष्ठेत्प्रथमं चास्य चरमं चैव संविशेत् ॥१६४॥

मनु० अ० २

अर्थ—गुरु के समीप सदा गुरु से हीन अन्न वस्त्र खाय पहिने और सवेरे दो घड़ी रहते गुरु से पहले उठे और सन्ध्या को गुरु के सोने के पीछे आप सोवे ॥१६४॥

नीचं शय्यासनं चास्य सर्वदा गुरुसन्निधौ ।
गुरोस्तु चक्षुर्विषयेन यथेष्टासनो भवेत् ॥१६८॥
नोदाहरेदस्य नाम परोक्षमपि केवलम् ।
न चैवास्यानुकुर्वीत गतिभाषित चेष्टितम् ॥१६६॥
गुरोर्यत्र परीवादो निन्दा वापि प्रवर्त्तते ।
कर्णौ तत्र पिधातव्यौ गन्तव्यं वा ततोऽन्यतः ॥२००॥
परीवादात्खरो भवतिश्वा वै भवति निन्दकः ।
परिभोक्ता कृमिर्भवति कीटो भवति मत्सरी ॥२०१॥

मनु० अ० २

अर्थ—गुरु के समीप शिष्य के शय्या और आसन नीचे ही होने चाहिएं और गुरुके देखते हाथ पांव फैला कर इच्छा

पूर्वक न बैठे ॥ १९८ ॥ पीठ पीछे भी गुरु का केवल नाम अर्थात् उपाध्याय आचार्य इत्यादि सत्कार के उपनामों के विना उच्चारण न करे और हंसी से उन के चलने बोलने आदि की नकल न करे ॥१९९॥ जहां गुरु का परीवाद अर्थात् उन में वर्त्तमान दोषों का कहना और निंदा अर्थात् झूठे दोष लगाना ये दोनों बातें जहां होती हों वहां स्थित शिष्य को कान मूंद लेने चाहिएं अथवा वहां से अन्यत्र चला जाना चाहिए ॥ २०० ॥ गुरु के परीवाद से शिष्य गधा होता है और निंदा करने वाला कुत्ता होता है और परिभोक्ता अर्थात् अनुचित गुरु के धन से जीने वाला कृमि होता है और मत्सरी अर्थात् गुरु का उत्कर्ष न सहने वाला कीट अर्थात् कृमी से कुछ मोटा होता है ॥२०१।

अविद्वांसमलं लोके विद्वांसमपि वा पुनः।
प्रमादा ह्युत्पथं नेतु काम क्रोधवशानुगम् ॥२१४॥
मात्रा स्वस्रादुहित्रा वा न विविक्तासनो भवेत्।
बलवानिन्द्रियग्रामो विद्वांसमपि कर्षति ॥२१५॥

मनु० अ० २

अर्थ—मैं विद्वान् हूं जितेन्द्रिय हूं ऐसा समझ कर स्त्रियों के समीप न बैठना चाहिए देह के धर्म से काम क्रोध के वशीभूत पुरुष विद्वान् हो अथवा मूर्ख हो उस को स्त्रियां कुमार्ग में ले जाने को समर्थ हैं ॥ २१४ ॥ माता बहिन अथवा पुत्री इनके साथ एकान्त स्थान में न बैठे क्योंकि इन्द्रियों का समूह बलवान् है शास्त्र की रीति से चलने वाले पुरुष को भी वश में कर लेता है ॥२१५॥

यं माता पितरौ क्लेशं सहेते संभवे नृणाम् ।
न तस्य निष्कृतिः शक्या कर्तुं वर्षशतैरपि ॥२२७॥
तयोर्नित्यं प्रियं कुर्यादाचार्यस्य च सर्वदा ।
तेष्वेव त्रिषु तुष्टेषु तपः सर्वं समाप्यते ॥२२८॥

मनु० अ० २

अर्थ—सन्तति के सम्भव अर्थात् गर्भाधान के पीछे उत्पत्ति पालन आदि में माता पिता जिस क्लेश को सहते हैं उसका ऋण सैंकड़ों वर्षों में भी नहीं दूर हो सकता है इस कारण देवतारूप माता पिता अपमान करने योग्य नहीं हैं ॥ २२७ ॥ माता पिता का और आचार्य का सदा प्रिय करे अर्थात् जिसमें वह प्रसन्न रहें सो करे क्योंकि उनके प्रसन्न रहने से सब तप पूरे होते हैं ॥२२८॥

विषादप्यमृतंग्राह्यं बालादपि सुभाषितम् ।
अमित्रादपि सद्वृत्तममेध्यादपि काञ्चनम् ॥२३९॥

मनु० अ० २

अर्थ—विष में जो अमृत मिला हो तो विष को दूर करके अमृत लेना चाहिये और बालक से भी हितवचन लेना चाहिये और सज्जन का चरित्र शत्रु से भी लेना चाहिये और अपवित्र स्थान से भी सुवर्ण आदि लेने चाहियें ॥२३९॥

एवं चरति यो विप्रो ब्रह्मचर्यमविप्लुतः ।
स गच्छत्युत्तमस्थानं न चेह जायेत पुनः ॥२४९॥

मनु० अ० २

अर्थ—जो ब्राह्मण ऐसे अखंड ब्रह्मचर्य को निवाहता है वह उत्तम ब्रह्म के स्थान में प्राप्त होता है और कर्मों के वश

से इस संसार में जन्म को नहीं लेता है ॥२४६॥

यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवताः ।
यत्रैतास्तु न पूज्यन्ते सर्वास्तत्रा फलाः क्रियाः ॥५६॥
शोचन्ति जामयो यत्र विनश्यत्याशु तत्कुलम् ।
न शोचन्ति तु यत्रैता वर्धते तद्धि सर्वदा ॥५७॥
जामयो यानि गेहानि शपन्त्यप्रतिपूजिताः ।
तानि कृत्याहतानीव विनश्यन्ति समन्ततः ॥५८॥

मनु० अ० ३

अर्थ—जिस कुल में पिता आदि करके स्त्री पूजी जाती हैं वहां देवता प्रसन्न होते हैं और जहां ये नहीं पूजी जातीं वहां देवताओं की प्रसन्नता न होने से सब यज्ञादिक क्रिया निष्फल हो जाती हैं ॥ ५६ ॥ जिस कुल में बहिन स्त्री पुत्री और पुत्र की वहु आदि दुःखी होती हैं वह कुल शीघ्र ही निर्धन हो जाता है और देवता तथा राजा आदि द्वारा पीडित होता है और जहां ये नहीं शोचती हैं वह धन आदि से सदा वृद्धि को प्राप्त होता है ॥ ५७ ॥

भगिनी पत्नी बेटी वहु यह दुःखी होकर जिन घरों को कोसती हैं वे घर कृत्या या अभिचार करके नाश किये की समान धन पशु आदि समेत नाश को प्राप्त होते हैं ॥ ५८ ॥

पञ्चसूना गृहस्थस्य चुल्ली पेपण्युपस्करः ।
कण्डनी चोदकुम्भश्च वध्यते यास्तु वाहयन् ॥६८॥

मनु० अ० ३

अर्थ-गृहस्थके यह पांच हिंसाके स्थान हैं चूल्हा १ चक्की २ वुहारी ३ ओखलीमुसल ४ जल का घट ५ इन को अपने काममें

लाता हुआ पुरुष पापों से शुद्ध होता है ॥ ६८ ॥

न भोजनार्थं स्वेविप्रः कुलगोत्रे निवेदयेत् ।
भोजनार्थं हि ते शंसन्वान्ताशीत्युच्यते बुधैः ॥१०९॥

मनु० अ० ३

अर्थ—ब्राह्मण अपने कुल तथा गोत्र को भोजन के लिये न कहे जिससे भोजनके लिये उनको कहता हुआ वह पंडितों करके वांताशी कहा गया है ॥ १०९ ॥

संतोषं परमास्थाय सुखार्थी संयतो भवेत् ।
संतोषमूलं हि सुखं दुःखमूलं विपर्ययः ॥१२॥

मनु० अ० ४

अर्थ—संभव के अनुसार भृत्यों के तथा अपने प्राणों के निर्वाहके लिये आवश्यक और पञ्चयज्ञों के करने ही के योग्य धनसे अधिक चाहना न करनेको सन्तोष कहते हैं उस सन्तोष का भली भान्ति आश्रय ले बहुत से धन के जोड़ने में संयम करे क्योंकि इस संसार में सन्तोष ही सुख का कारण है और परलोकमें स्वर्गादि के सुख का कारण है इससे विपरीत अर्थात् उलटा असन्तोष है सो दुःख का कारण है क्योंकि बहुत धन जोड़ने के श्रम से बहुत दुःख उत्पन्न होने के कारण संपत्ति तथा विपत्ति में क्लेश होता है ॥ १२ ॥

इन्द्रियार्थेषु सर्वेषु न प्रसज्येत कामतः ।
अतिप्रसक्तिं चैतेषां मनसा संनिवर्त्तयेत् ॥१६॥

मनु० अ० ४

अर्थ—इन्द्रियों के अर्थ अर्थात् जो रूप रस गन्ध स्पर्श आदि विषय निषिद्ध नहीं हैं उन में अर्थात् अपनी स्त्री आदि के भोगमें कामसे अत्यन्त सक्त न होय क्योंकि विषय अस्थिर

हैं और स्वर्ग तथा मोक्षरूप कल्याणके विरोधी हैं यह जानकर इन से मन को निवृत्त करे॥ १६॥

यथा यथा हि पुरुषः शास्त्रं समधिगच्छति ।
तथा तथा विजानाति विज्ञानं चास्य रोचते ॥२०॥

मनु० अ० ४

अर्थ—जैसे जैसे पुरुष शास्त्र को अच्छी तरह से पढ़ता है वैसे वैसे विशेष कर जानता है और अन्य शास्त्रों के विषय का भी विशेषज्ञान इसको रुचता है अर्थात् उज्ज्वल होता है ॥ २० ॥

नाधार्मिके वसेद्ग्रामे न व्याधि बहुलेभृशम् ।
नैकः प्रपद्येताध्वानं न चिरं पर्वते वसेत् ॥६०॥

मनु० अ० ४

अर्थ—जिस ग्राममें बहुतसे अधर्मी रहते हों और जिस में बहुत से मनुष्य कठिन रोगों से पीड़ित हों उस गांव में अत्यन्त वसना योग्य नहीं है और मार्ग में अकेला कभी न चले और बहुत काल तक पर्वत पर न वसे ॥ ६० ॥

दशसूनासमं चक्रं दशचक्रसमो ध्वजः ।
दशध्वजसमो वेशो दशवेशसमो नृपः ॥८५॥
दशसूनासहस्राणि यो वाहयति सौनिकः ।
तेन तुल्यः स्मृतो राजा घोरस्तस्य प्रतिग्रहः ॥८६॥

मनु० अ० ४

अर्थ— दशसूनावालों में जितना दोष होता है उतना एक तेली में होता है और दश तेलियों में जितना दोष होता है उतना एक कलालमें होता है और दश कलालोंमें जितना दोष होता है उतना एक वेश्या बहुरूपियों में होता है और जितना

दश वेश्या वा बहुरूपियों में होता है उतना एक राजामें मनु आदिकों ने कहा है ॥ ८५ ॥ जो सूनावाला दश हज़ार जीवों का वध करता है उसकी बराबर राजा को मनु आदिकों ने कहा है तिससे राजा का धन लेना नरक का कारण होने से भयानक है ॥ ८६ ॥

विद्युत्स्तनित वर्षेषु महोल्कानां च संप्लवे ।
अकालिकमनध्यायमेतेषु मनुरब्रवीत् ॥१०३॥
एतांस्त्वभ्युदितान्विद्याद्यदा प्रादुष्कृताग्निषु ।
तदा विद्यादनध्यायमनृतौ चाभ्रदर्शने ॥१०४॥
निर्घाते भूमिचलने ज्योतिषां चोपसर्जने ।
एतानकालिकान्विद्यादनध्यायानृतावपि ॥१०५॥
प्रादुष्कृतेष्वग्निषु तु विद्युत्स्तनि तनिःस्वने ।
सज्योतिः स्यादनध्यायः शेषे रात्रौ यथा दिवा ॥१०६॥

मनु० अ० ४

अर्थ—बिजली का चमकना गर्जना और इन सबोंके एक साथ होने पर और इधर उधर बहुत से उल्कापात अर्थात् तारों के टूटने पर उस समय से लगा कर दूसरे दिन उसी समय तक मनुने अकालिक अनध्याय कहा है ॥ १०३ ॥ जो अग्निहोत्र के समय बिजली आदि इन सर्व उत्पातों को एक साथ प्रगट हुए जाने तो वर्षाऋतु में अनध्याय करे सदा नहीं और ऋतुमें अग्निहोत्र के समय मेघके देखने ही से अनध्याय होता है वर्षा ऋतु में नहीं होता है ॥ १०४ ॥ आकाशमें उत्पन्न हुए उत्पात शब्द के होने पर और भूमिकम्प होने पर और ज्योति जो सूर्य चन्द्र तारागण हैं तिनके उपद्रव होने पर इन

अनध्यायों को अकालके जाने और ऋतुमें भी वर्षाके विषय भूकम्प आदि दोषके लिये नहीं होते हैं इस अभिप्रायसे "ऋतौ अपि" यह कहा ॥१०५॥ होम के अग्नि के प्रकाशित करने पर सन्ध्या समय जो बिजली और गर्जना हो वर्षा न हो तो सज्योति अनध्याय होता है अकालका नहीं है उनमें जो प्रातः कालकी सन्ध्यामें बिजली और गर्जना हो तो जबतक सूर्यज्योति है तब तक एक दिन का अनध्याय होता है और सायं काल की सन्ध्या में होवे तो जब तक नक्षत्र ज्योति है तब तक रात्रि भरका अनध्याय होता है और बिजली गर्जना तथा वर्षा तीनों में से जो वर्षा नाम तीसरा ही हो तो जैसे दिनमें अनध्याय होता है ऐसे ही रात्रि में भी अर्थात् दिन रात का अनध्याय होता है॥ १०६॥

नीहारे बाणशब्दे च संध्ययोरेव चोभयोः ।
अमावस्या चतुर्दश्योः पौर्णमास्यष्टकासुच ॥११३॥
अमावस्या गुरुं हन्ति शिष्यं हन्ति चतुर्दशी ।
ब्रह्माष्टकापौर्णमास्यौ तस्मात्ताः परिवर्जयेत् ॥११४॥

मनुस्मृतिः अध्याय चतुर्थः

अर्थ—कुहिर में और बाण के शब्द में और दोनों संध्याओं में और अमावस्या तथा चतुर्दशी को पूर्णमासी और अष्टमी को वेद न पढ़े ॥ ११३ ॥ अमावस्या गुरु को मारती है और चतुर्दशी शिष्य को और अष्टमी तथा पूर्णमासी वेदको भुलाती है इस कारण ये सब वेद के पढ़ने में वर्जित हैं ॥ ११४ ॥

अमावस्यामष्टमीञ्च पौर्णमासीं चतुर्दशीम् ।
ब्रह्मचारी भवेन्नित्यमप्यृतौ स्नातको द्विजः ॥१२८॥

मनुस्मृति अध्यायः चतुर्थ

अर्थ—अमावस्या अष्टमी पूर्णमासी और 'चतुर्दशी को स्नातक द्विज ऋतुकाल में भी स्त्री से भोग न करे सदा ब्रह्मचारी रहे ॥ १२८ ॥

हीनाङ्गानतिरिक्ताङ्गान् विद्याहीनान् वयोऽधिकान् ।
रूपद्रव्यविहीनांश्च जातिहीनांश्च नाक्षिपेत् ॥ १४१ ॥

मनुस्मृतिः अध्याय ४

अर्थ—हीन अंगवालों की, अधिक अंगवालों की मूर्खों की बूढ़ों की और रूप तथा द्रव्य से हीन अर्थात् कुरूप और कंगालों की और हीन जाति की कभी 'काना' आदि शब्द कह कर पुकारने से निन्दा न करे ॥ १४१ ॥

मङ्गलाचारयुक्तानां नित्यञ्च प्रयतात्मनाम् ।
जपतां जुह्वताञ्चैव विनिपातो न विद्यते ॥१४६॥

मनु० अ० ४

अर्थ—मङ्गल तथा आचार से नित्य शुद्ध और जप तथा होम में लगे हुए पुरुषों को दैवी तथा मानुषी उपद्रव नहीं होते हैं ॥ १४६ ॥

परकीयनिपानेषु न स्नायाच्च कदाचन ।
निपानकर्तुः स्नात्वा तु दुष्कृतांशेन लिप्यते ॥२०१॥
यानशय्यासनान्यस्य कूपोद्यानगृहाणि च ।
अदत्तान्युपभुञ्जान एनसः स्यात्तुरीयभाक् ॥२०२॥

मनु० अ० ४

अर्थ—पराये बनाये हुए ताल (तालाब) आदि में कभी स्नान न करे उन में नहा कर उन के बनाने वाले के पापसे चौथाई भागका पानेवाला होता है बिना बनाई हुई नदी आदि न हो तो पराये बनाये हुए तालाब आदि में प्रदान से पहले

पांच पिण्डों का उद्धार कर नहाना चाहिये ॥ २०१ ॥ पराया यान आसन कुआ बाग और घर जो विना दिये इनका भोग करे तो बनवाने वालेके पापके चतुर्थ अंशका भागी होता है॥

वारिदस्तृप्तिमाप्नोति सुखमक्षय्यमन्नदः ।
तिलप्रदः प्रजामिष्टां दीपदश्च चुरुत्तमम् ॥२२६॥
भूमिदो भूमिमाप्नोति दीर्घमायुर्हिरण्यदः ।
गृहदोऽग्र्याणि वेश्मानि रूप्यदो रूपमुत्तमम् ॥२३०॥

मनु० अ० ४

अर्थ—जलका देने वाला क्षुधा पिपासा दूर होने से तृप्ति को प्राप्त होता है और अन्नका देने वाला अक्षय सुखको और तिलका देने वाला चाही हुई संततिको और दीपका देनेवाला उत्तम नेत्रों को प्राप्त होता है ॥ २२६ ॥ भूमिका देनेवाला भूमि को और सुवर्ण का देने वाला बड़ी आयु को और घरका देने वाला बहुत अच्छे घरों को और रूपेका (चाँन्दीका) देनेवाला सम्पूर्ण जनोंके नेत्रों को मनोहर रूपको देने वाला होता है॥

योऽर्चितं प्रतिगृह्णाति ददात्यर्चितमेव च ।
तावुभौ गच्छतः स्वर्ग नरकं तु विपर्यये ॥२३५॥

मनु० अ० ४

अर्थ—जो दाता सत्कार पूर्वक देता है और जो लेनेवाला उस दान को सत्कार पूर्वक लेता है वे दोनों स्वर्गको जाते हैं और विपर्यय अर्थात् उलटे होनेमें नरक होता है अर्थात् विना सत्कार के देने लेने वाले दोनों नरकगामी होते हैं ॥ २३५ ॥

धर्मशनैः संचिनुयाद्वल्मीकमिव पुत्तिकाः ।
परलोकसहायार्थ सर्वभूतान्यपीडयन् ॥२३८॥

नामुत्र हि सहायार्थं पिता माता च तिष्ठतः ।
न पुत्र दारा न ज्ञातिर्धर्मस्तिष्ठति केवलः ॥२३९॥
एकः प्रजायते जन्तुरेक एव प्रलीयते ।
एकोऽनुभुंक्ते सुकृतमेक एव च दुष्कृतम् ॥२४०॥
मृतंशरीरमुत्सृज्य काष्ठलोष्टसमं चितौ ।
विमुखा बान्धवायान्ति धर्मस्तमनुगच्छति ॥२४१॥
तस्माद्धर्मं सहायार्थं नित्यं संचिनुयाच्छनैः ।
धर्मेण हि सहायेन तमस्तरति दुस्तरम् ॥२४२॥

मनु० अ० ४

अर्थ-सब जीवों की पीड़ाका त्याग करता हुआ परलोकमें सहायके लिये शक्तिके अनुसार शनैः शनैः धर्मको ऐसे बढ़ावे जैसे दीमक बांबी को बढ़ाती है ॥ २३८ ॥ जिससे परलोक में सहायरूपी कार्य की सिद्धि के लिये पिता माता पुत्र स्त्री और जाति के नहीं स्थित होते हैं किन्तु एक धर्मही दूसरा हो उपकार के लिये स्थित होता है तिससे पुत्र आदिकों से भी बड़े उपकार करनेवाले धर्मको करे ॥ २३९ ॥ प्राणी एक ही उत्पन्न होता है और एक ही मर जाता है और एक ही पुण्य तथा पापको भोगता है माता आदिक साथ नहीं तिससे मातादिकों की अपेक्षा से भी धर्म को न छोड़े ॥ २४० ॥ मृत अर्थात् मन प्राण आदि से रहित शरीरको काष्ठ तथा लोष्ठके समान भूमि में छोड़ कर भाई बन्धु मुँह फेरकर चले जाते हैं मरे हुए जीव के साथ नहीं जाते हैं और धर्म तो उस के साथ जाता है ॥ २४१ ॥ जिस कारण सहाय करनेवाले धर्म से दुस्तरतम अर्थात् कठिनाई से उतरने योग्य नरक आदि के दुःखको उतर

जाता है तिससे धर्मको सहायभाव से सदा शनैः शनैः करे॥

लशुनं गृञ्जनं चैव पलाण्डुं कवकानि च ।
अभक्ष्याणि द्विजातीनाममेध्यप्रभवानि च॥५॥

मनु० अ० ५

अर्थ—लशुन गृंजन प्याज (काँदा) धरती के फूल और अशुद्ध विष्ठा आदि में उत्पन्न चौलाई आदि ये द्विजातियों को अभक्ष्य हैं शूद्रों को नहीं ॥ ५ ॥

न कृत्वा प्राणिनां हिंसां मांसमुत्पद्यते क्वचित् ।
न च प्राणिवधः स्वर्ग्यस्तस्मान्मांसं विवर्जयेत् ॥४८॥

मनु० अ० ५

अर्थ—प्राणियों को मारने विना कहीं मांस नहीं उत्पन्न होता है और प्राणियों को मारना स्वर्गका कारण नहीं है किन्तु नरक ही का कारण है तिससे मांस को छोड़ दे ॥ ४८ ॥

अनुमन्ता विशसिता निहन्ता क्रयविक्रयी ।
संस्कर्ता चोपहर्ता च खादकश्चेति घातकाः ॥५१॥

मनु० अ०५

अर्थ—अनुमंता अर्थात् जिसकी आज्ञा विना मार न सके और विशसिता जो अंगोंको काटकर जुदा २ करे और क्रय विक्रयी जो मोल ले और बेचे और संस्कर्ता जो पाक करे और उपहर्ता अर्थात् परोसने वाला और खादक अर्थात् खाने वाला ये सब घातक अर्थात् मारने वाले हैं ॥ ५१ ॥

वर्षे वर्षेऽश्वमेधेन यो यजेत शतं समाः ।
मांसानि च न खादेद्यस्तयोः पुण्यफलं समम् ॥५३॥

फलमूलाशनैर्मेध्यैर्मुन्यन्नानां च भोजनैः ।
न तत्फलमवाप्नोति यन्मांसपरिवर्जनात् ॥५४॥
मांस भक्षयितामुत्र यस्य मांसमिहाद्म्यहम् ।
एतन्मांसस्य मांसत्वं प्रवदंति मनीषिणः ॥५५॥

मनु० अ० ४

अर्थ—जो सौ वर्ष तक प्रत्येक वर्ष में अश्वमेध से यजन करता है और जन्म भर मांस को नहीं खाता उन दोनों के पुण्य का फल स्वर्ग आदि समान है ॥ ५३ ॥ पवित्र फल मूलों के खाने से और वानप्रस्थों के खाने योग्य तृण धान्य आदि के खाने से ही वह फल नहीं मिलता है जो शास्त्र में नियम किए हुए मांस के न खाने वाले को मिलता है ॥ ५४ ॥ इस लोक में जिस के मांस को मैं खाता हूं परलोक में वह मुझ को खायगा पंडितों ने मांस शब्द का यही अर्थ किया है ॥ ५५ ॥

सोमाग्न्यर्कानिलेन्द्राणां वित्ताप्पत्योर्यमस्य च ।
अष्टानां लोकपालानां वपुर्धारयते नृपः ॥९६॥

मनु० अ० ५

अर्थ—चन्द्रमा अग्नि सूर्य वायु इन्द्र कुवेर वरुण यम इन आठों लोकपालों के शरीर को राजा धारण करता है ॥९६॥

सर्वेषामेव शौचानामर्थशौचं परंस्मृतम् ।
योऽर्थ शुचिर्हि स शुचिर्न मृद्वारि शुचिः शुचिः ॥१०६
क्षान्त्या शुद्ध्यन्ति विद्वांसो दानेना कार्यकारिणः ।
प्रच्छन्न पापा जप्येन तपसा वेद वित्तमाः ॥१०७॥

मृत्तोयैः शुद्धयते शोध्यं नदी वेगेन शुद्धयति ।
रजसा स्त्री मनो दुष्टा सन्यासेन द्विजोत्तमः ॥१०८॥
अद्भिर्गात्राणि शुद्धयन्ति मनः सत्येन शुद्धयति ।
विद्यातपोभ्यां भूतात्मा बुद्धिर्ज्ञानेन शुद्धयति ॥१०९॥

मनु० अ० ५

अर्थ—सब शौचों में अर्थात् मिट्टी पानी आदि में देह की शुद्धि और मन की शुद्धि इन सबों में अर्थ शुद्धि अर्थात् अन्याय से पराये धन के लेने की इच्छा को छोड़ कर धन का इकट्ठा करना सब से अधिक शौच मनु आदिकों ने कहा है क्योंकि जो धन में शुद्ध है वह शुद्ध है और जो मृत्तिका तथा जल से शुद्ध है और धन में अशुद्ध है वह अशुद्ध ही है ॥ १०६ ॥ दूसरे के अपकार करने पर उस के बदले के अपकार करने में बुद्धि न करने रूप क्षमा से पंडित शुद्ध होते हैं और नहीं करने योग्य काम के करने वाले दान से और जिन के पाप छुपे हुए हैं वह जप से और वेद का अर्थ तथा चांद्रायण आदि तप के जानने वाले एकादश अध्याय में कहेंगे उस तप से शुद्ध होते हैं ॥ १०७ ॥ मल आदि से दूषित शोधने योग्य मृत्तिका तथा जल से शोधे जाते हैं और श्लेष्मा आदि अशुद्ध से दूषित नदी का प्रवाह वेग से शुद्ध होता है और जिस का मन परपुरुष से मैथुन के संकल्प से दूषित है ऐसी स्त्री प्रतिमास में रजो धर्म से उस पाप से शुद्ध होती है और ब्राह्मण छठे अध्याय में जो कहेंगे उस संन्यास से शुद्ध होता है ॥ १०८ ॥ पसीना आदि से दूषित अंग जल के धोने से शुद्ध होते हैं और निषिद्ध चिंता आदि से दूषित मन सत्य से शुद्ध होता है और सूक्ष्म आदि लिंग शरीर में

अवच्छिन्न जीवात्मा ब्रह्मविद्या तथा पाप के नाश करने वाले तप से शुद्ध होता है और अन्यथा ज्ञान से दूषित बुद्धि यथार्थ विषय के ज्ञान से शुद्ध होती है ॥ १०६ ॥

बालया वा युवत्या वा वृद्धया वापि योषिता ।
न स्वातन्त्र्येण कर्त्तव्यं किंचित्कार्यं गृहेष्वपि ॥१४७॥
बाल्ये पितुर्वशे तिष्ठेत्पाणिग्राहस्य यौवने ।
पुत्राणां भर्तरि प्रेते न भजेत्स्त्री स्वतन्त्रताम् ॥१४८॥

मनु० अ० ५

अर्थ—बालकपन में तरुणावस्था में अथवा वृद्धावस्था में स्थित स्त्री को घर में भी कुछ काम स्वाधीन हो कर नहीं करना चाहिये ॥ १४७ ॥ बालकपन में पिता के वश में रहे और तरुणावस्था में पति के अधीन रहे और पति के मरने पर पुत्रों के और जो पुत्र न हो तो उनके सपिंडों के और सपिंड भी न हो तो पिता के पक्ष के और जो दोनों पक्ष न हों तो जाति तथा राजा आदि के अधीन रहे कभी स्त्री स्वतन्त्र न हो ॥१४८॥

विशीलः कामवृत्तो वा गुणैर्वा परिवर्जितः ।
उपचर्यः स्त्रिया साध्व्या सततं देववत्पतिः ॥१५४॥
नास्ति स्त्रीणां पृथग्यज्ञो न व्रतं नाप्युपोषितम् ।
पतिं शुश्रूषते येन तेन स्वर्गे महीयते ॥१५५॥
पाणिग्राहस्य साध्वी स्त्री जीवतो वा मृतस्य वा ।
पतिलोकमभीप्सन्ती नाचरेत्किंचिदप्रियम् ॥१५६॥

मनु० अ० ५

अर्थ—शील से रहित हो अथवा दूसरी स्त्री से प्रीति करने वाला हो अथवा विद्या आदि गुणों से हीन हो तिस पर भी पतिव्रता स्त्री को पति देवता के समान मानने योग्य है ॥ १५४ ॥ जैसे पति की किसी स्त्री के रजोधर्म आदि के योग से उपस्थित न होने पर दूसरी स्त्री से यज्ञ की सिद्धि हो जाती है ऐसे स्त्रियों की भर्त्ता के विना यज्ञ सिद्धि नहीं होती है और भर्त्ता की आज्ञा विना व्रत तथा उपवास भी नहीं है किंतु भर्त्ता की सेवा ही से स्त्री स्वर्ग लोक में पूजित होती है ॥ १५५ ॥ पति की सेवा से प्राप्त हुए स्वर्ग आदि लोक की इच्छा करने वाली पतिव्रता स्त्री जीते हुए अथवा मरे हुए पति का कुछ भी अप्रिय न करे. मरे हुए का अप्रिय व्यभिचार से तथा कहे हुए श्राद्ध के न करने से होता है ॥१५६

आसीता मरणात्क्षान्ता नियता ब्रह्मचारिणी ।
यो धर्म एकपत्नीनां काङ्क्षन्ती तमनुत्तमम् ॥१५८॥
अनेकानि सहस्राणि कुमार ब्रह्मचारिणाम् ।
दिवं गतानि विप्राणामकृत्वा कुलसंततिम् ॥१५९॥
मृते भर्त्तरि साध्वी स्त्री ब्रह्मचर्ये व्यवस्थिता ।
स्वर्गं गच्छत्यपुत्रापि यथा ते ब्रह्मचारिणः ॥१६०॥
अपत्यलोभाद्या तु स्त्री भर्तारमति वर्त्तते ।
सेह निन्दामवाप्नोति पतिलोकाच्च हीयते ॥१६१॥
नान्योत्पन्ना प्रजास्तीह न चाप्यन्य परिग्रहे ।
न द्वितीयश्च साध्वीनां क्वचिद्भर्तोपदिश्यते ॥१६२॥

मनु० अ० ५

अर्थ--क्षमायुक्त, नियम वाली और पतिव्रताओं के उत्तम धर्म को चाहने वाली तथा मधु मांस मैथुन के त्याग रूप, ब्रह्मचर्य से शोभित, मरण पर्यंत रहे और जो पुत्र रहित भी हो तो पुत्र के लिये परपुरुष की सेवा न करे॥ १५८॥ बालकपन से ब्रह्मचारी जिन्होंने विवाह नहीं किये ऐसे सनक बालखिल्य आदि हजारों ब्राह्मण कुल की वृद्धि के लिये सन्तति के उत्पन्न किये बिना भी स्वर्ग को गये ॥ १५६ ॥ जिसका आचार अच्छा है ऐसी स्त्री भर्ता के मरने पर पर-पुरुष से मैथुन को न करके पुत्र रहित भी स्वर्ग को जाती है जैसे वे सनक बालखिल्य पुत्र न होने पर भी स्वर्ग को गये ॥ १६० ॥ मेरे पुत्र उत्पन्न हो उस से मैं स्वर्ग को जाऊंगी इस लोभ से जो स्त्री भर्ता का उल्लंघन करती है अर्थात् व्यभिचार करती है वह इस लोक में निन्दा को प्राप्त होती है और उस पुत्र से स्वर्ग को नहीं प्राप्त होती है ॥ १६१ ॥ भर्ता से भिन्न उत्पन्न सन्तति शास्त्रीय नहीं होती है दूसरी स्त्री में उत्पन्न की हुई प्रजा उत्पन्न करने वाले की नहीं है और अच्छे आचार वाली स्त्रियों का शास्त्र में कहीं दूसरा पति नहीं कहा है ॥ १६२ ॥

व्यभिचारात्तु भर्तुः स्त्री लोके प्राप्नोति निन्द्यताम् ।
शृगालयोनिं प्राप्नोति पापरोगैश्च पीड्यते ॥ १६४ ॥
मनुस्मृतिः अध्याय ५

अर्थ—पराये पुरुष के साथ भोग करने से स्त्री लोक में निन्दा को प्राप्त होती है और मरकर शृगाली (स्यारी, गीदड़ी) होती है और कुष्ठ आदि पाप रोगों से पीड़ित होती है ॥१६४

गृहस्थस्तुयदा पश्येद्वलीपलितमात्मनः ।

अपत्यस्यैव चापत्यं तदारण्यं समाश्रयेत् ॥ २ ॥

मनुस्मृतिः अध्याय ६

अर्थ—गृहस्थ जब अपनी देह की त्वचा को शिथिल देखे और बालों को सफेद देखे और पुत्र को पुत्र उत्पन्न हुआ देखे, तब विषयों में वैराग्य युक्त हो वानप्रस्थ आश्रम के लिये वन का आश्रय ले ॥ २ ॥

यस्मादण्वपि भूतानां द्विजान्नोत्पद्यतेभयम् ।
तस्य देहाद्विमुक्तस्य भयं नास्ति कुतश्चन ॥ ४० ॥
आगारादभिनिष्क्रान्तः पवित्रो पचितो मुनिः ।
समुपोढेषु कामेषु निरपेक्षः परिव्रजेत् ॥ ४१ ॥
एक एव चरेन्नित्यं सिद्ध्यर्थमसहायवान् ।
सिद्धिमेकस्य संपश्यन्न जहाति न हीयते ॥ ४२ ॥
अनग्निरनिकेतः स्याद् ग्राममन्नार्थमाश्रयेत् ।
उपेक्षकोऽसंकुसुको मुनिर्भाव समाहितः ॥ ४३ ॥
कपालं वृक्षमूलानि कुचेलमसहायता ।
समता चैव सर्वस्मिन्नेतन्मुक्तस्य लक्षणम् ॥ ४४ ॥
नाभिनन्देत मरणं नाभिनन्देत जीवितम् ।
कालमेव प्रतीक्षेत निर्देशं भृतको यथा ॥ ४५ ॥
दृष्टिपूतं न्यसेत्पादं वस्त्रपूतं-जलं पिबेत् ।
सत्यपूतां वदेद्वाचं मनः पूतं समाचरेत् ॥ ४६ ॥
अतिवादांस्तितिक्षेत नावमन्येत कंचन ।
न चेमं देहमाश्रित्य वैरं कुर्वीत् केनचित् ॥ ४७ ॥

क्रुध्यन्तं न प्रतिक्रुध्येदाक्रुष्टः कुशलं वदेत् ।
सप्तद्वारावकीर्णां च न वाचमनृतां वदेत् ॥ ४८ ॥
अध्यात्मरतिरासीनो निरपेक्षो निरामिषः ।
आत्मनैव सहायेन सुखार्थी विचरेदिह ॥ ४९ ॥
न चोत्पातनिमित्ताभ्यां न नक्षत्राङ्गविद्यया ।
नानुशासन वादाभ्यां भिक्षां लिप्सेत् कर्हिचित् ॥५०॥
न तापसैर्ब्राह्मणैर्वा वयोभिरपि वाश्वभिः ।
आकीर्णं भिक्षुकैर्वान्यैरागारमुपसंव्रजेत् ॥ ५१ ॥

मनुस्मृतिः अध्याय ६

अर्थ—जिस द्विज से भूतों को थोड़ा भी भय नहीं है उस को वर्तमान देह के नाश होने पर किसी से भी भय नहीं होता है ॥४०॥ घर से निकला हुआ पुरुष पवित्र दंड कमंडलु आदि से युक्त तथा मौनी और प्राप्त हुए कामों में अर्थात् किसी से पहुंचाये हुए स्वादिष्ट अन्न आदि में इच्छा रहित हो संन्यास धारण करे ॥ ४१ ॥ नच सङ्ग रहित एक पुरुष को मोक्ष की प्राप्ति होती है इस बात को अकेला ही सदा मोक्ष के लिये विचारे, एक ही इसके कहने से पहले पहिचाने हुए पुत्र आदि का त्याग कहा गया, और असहायवान् अर्थात् सहायक कोई न हो जो एकाकी विचरता है वह किसी को नहीं छोड़ता है, और न किसी के छोड़ने का दुःख पाता है न किसी से वह छोड़ा जाता है और न कोई इस से छोड़ने के दुःख को अनुभव कराया जाता है तिससे सर्वत्र ममता रहित सुख से मोक्ष को प्राप्त होता है ॥ ४२ ॥ लौकिक अग्नि के छूने से तथा घर से रहित और उपेक्षा से अर्थात् शरीर में रोग आदि के उत्पन्न होने पर उस के दूर होने का उपाय न करे और

असंकुसुक अर्थात् स्थिर बुद्धि रहे और मुनि अर्थात् मौनी हो भाव जो ब्रह्म है उसमें मन को एकाग्र लगा कर वन में दिन रात वसता हुआ केवल भिक्षा ही के लिये ग्राम में आवे ॥४३॥ मिट्टी का खपरा (मिट्टी का वर्तन) आदि भिक्षा का पात्र और वसने के लिये वृक्षों के मूल और मोटा फटा वस्त्र अर्थात् कौपीन कंथा (गुदड़ी) आदि और सब में ब्रह्म बुद्धि होने से शत्रु मित्र का न होना यह मुक्ति का साधन होने से मुक्त का चिन्ह है ॥ ४४ ॥ जीने और मरने की इच्छा न करे, किन्तु अपने कर्म के आधीन काल है जो मरण काल है उसकी प्रतीक्षा करे; जैसे सेवक अपने सेवन काल के शोधने की प्रतीक्षा करता है ॥ ४५ ॥ वाल तथा हाड आदि वचाने के लिये आंखों से देखकर भूमि में पैर रक्खे और वस्त्र से छान कर जल पीवे तथा सत्य से पवित्र वाणी बोले और निषिद्ध संकल्पों से रहित मन से सदा पवित्रात्मा हो ॥ ४६ ॥ दूसरे की कही कठोर वातों को सह ले, किसी का अपमान न करे और रोग आदिकों के स्थान में इस चंचल देह का आश्रय लेकर इस के लिये किसी से वैर न करे ॥ ४७ ॥ क्रोध करने वाले के ऊपर क्रोध न करे और निन्दा करे तो मधुर वाणी बोले, आप भी निन्दा न करे और सप्तद्वारावकीर्ण अर्थात् चक्षु आदि पांच बुद्धीन्द्रिय और मन तथा बुद्धि इन सातों द्वारा ग्रहण किये हुए पदार्थों के मध्य में कुछ वचन न कहे किन्तु ब्रह्मविषयक ही कहे, अनृत अर्थात् नाश होने वाले कार्य्यों के मध्य में वाणी को न उच्चारण करे किन्तु अविनाशी ब्रह्म के मध्य में प्रणव तथा उपनिषद् रूप वाणी का उच्चारण करे ॥ ४८ ॥ सदा ब्रह्म के ध्यान में लगा हुआ और स्वस्तिक आदि योग के आसन में वैठा हुआ दण्ड कमण्डलु आदि में भी विशेष अपेक्षा रहित और निरामिष अर्थात् विषयों

की इच्छा रहित अपने देह ही की सहायता से मोक्ष के सुख का चाहने वाला संसार में विचरे ॥ ४९ ॥ भूकम्प आदि उत्पातों का और नेत्रों के फड़कने आदि निमित्तों के और अश्विनी आदि नक्षत्रों के तथा सामुद्रिक से हाथों की रेखाओं के फल कहने से और नीति मार्ग के उपदेश से और शास्त्र का अर्थ कहने से कभी भिक्षा पाने की इच्छा न करे ॥ ५० ॥ वानप्रस्थों से तथा अन्य खाने वाले ब्राह्मणों से और पक्षियों तथा कुत्तों से युक्त घर में भिक्षा के लिये न जाय ॥५१॥

अतैजसानि पात्राणि तस्य स्युर्निर्व्रणानि च ।
तेषामद्भिः स्मृतं शौचं चमसानामिवाध्वरे ॥ ५३ ॥
अलाबुं दारुपात्रं च मृन्मयं वैदलं तथा ।
एतानि यतिपात्राणि मनुः स्वायंभुवोऽब्रवीत् ॥५४॥
एककालं चरेद्भैक्षं न प्रसज्जेत विस्तरे ।
भैक्षे प्रसक्तो हि यतिर्विषयेष्वपि सज्जति ॥ ५५ ॥
विधूमे सन्नमुसले व्यङ्गारे भुक्तवज्जने ।
वृत्ते शरावसम्पाते भिक्षां नित्यं यतिश्चरेत् ॥ ५६ ॥
अलाभे न विषादी स्याल्लाभे चैव न हर्षयेत् ।
प्राणयात्रिकमात्रः स्यान्मात्रासंगाद्विनिर्गतः ॥५७॥

मनुस्मृति अध्याय ६

अर्थ—सुवर्ण आदि धातुओं को छोड़कर छेदों से रहित सन्यासी के भिक्षापात्र हों, उन पात्रों की यज्ञ में चमसों के समान जल से शुद्धि होती है ॥ ५३ ॥ तूंबी काठ मृत्तिका तथा बांस आदि के खंड से बने हुए संन्यासियों के भिक्षापात्र होते हैं यह स्वायं मनु ने कहा है ॥ ५४ ॥ एक बार प्राण

धारण के लिये भिक्षा करे अधिक न करे क्योंकि बहुत भिक्षा के भोजन करने वाले यति की प्रधान धातु के बढ़ने से स्त्री आदि विषयों की इच्छा होगी ॥५५॥ रसोई का धुआं दूर होने पर और मूसल के कूटनेका शब्द बंद होने पर तथा रसोई की आग बुझी होने पर और गृहस्थ तक सबों के भोजन कर लेने पर शरावों के त्याग किये जाने पर ही यति सदा भिक्षा को करे५६ भिक्षा आदि के न मिलने में दुःखी न हो और मिलने में सुखी न हो, प्राणों के निर्वाह योग्य भोजन किया करे और दण्ड कमण्डलु आदि मात्राओं में भी यह बुरा है इसको छोड़ता हूं यह अच्छा है इसको लेता हूं ऐसी बातों को छोड़ दे ॥५७॥

अल्पान्नाभ्यवहारेण रहः स्थानासनेन च ।
ह्रियमाणानि विषयैरिन्द्रियाणि निवर्त्तयेत् ॥ ५९ ॥
इन्द्रियाणां निरोधेन रागद्वेषक्षयेण च ।
अहिंसया च भूतानाममृतत्वाय कल्पते ॥ ६० ॥
अवेक्षेत गतीर्नृणां कर्मदोषसमुद्भवाः ।
निरये चैव पतनं यातनाश्च यमक्षये ॥ ६१ ॥
विप्रयोगं प्रियश्चैव संयोगं च तथाप्रियैः ।
जरया चाभिभवनं व्याधिभिश्चोपपीडनम् ॥ ६२ ॥

मनुस्मृति अध्याय ६

अर्थ—थोड़े आहार के खाने से और एकान्त स्थान में रहने से रूप आदि विषयों द्वारा खींची गई इन्द्रियों को निवृत्त करे अर्थात् विषयों से हटावे ॥ ५९ ॥ इन्द्रियों के रोकने से और रागद्वेष के दूर होने से और प्राणियों की हिंसा न करने से मोक्ष के योग्य होता है ॥ ६० ॥ शास्त्र में कहे हुए के न करने और निन्दित के करने रूप कर्म के दोष से उत्पन्न हुई

मनुष्यों की पशु आदि योनि की प्राप्ति का और नरक में गिरने का और यमलोक में स्थित का तीव्र खड्ग से काटने आदि से उत्पन्न, श्रुति पुराण आदि में कही हुई तीव्र पीडाओं का चिंतवन करे ॥ ६१ ॥ प्यारे पुत्र आदि के वियोग को और अनिष्ट अर्थात् न चाहे हुए हिंसक आदि के मिलने को और बुढ़ापे के दबा लेने को तथा रोग आदि से पीडित होने आदि को कर्म के दोषों से उत्पन्न ऐसा चिंतवन करे ॥ ६२ ॥

अधर्मप्रभवं चैव दुःखयोगं शरीरिणाम् ।
धर्मार्थप्रभवं चैव सुखसंयोगमक्षयम् ॥६४॥
सूक्ष्मतां चान्ववेक्षेत योगेन परमात्मनः ।
देहेषु च समुत्पत्तिमुत्तमेष्वधमेषु च ॥ ६५ ॥
दूषितोऽपि चरेद्धर्मं यत्र तत्राश्रमे रतः ।
समः सर्वेषु भूतेषु न लिङ्गं धर्मकारणम् ॥ ६६ ॥
फलं कतकवृक्षस्य यद्यप्यम्बुप्रसादकम् ।
न नामग्रहणादेव तस्यवारि प्रसीदति ॥ ६७ ॥
संरक्षणार्थं जन्तूनां रात्रावहनि वा सदा ।
शरीरस्यात्यये चैव समीक्ष्य वसुधां चरेत् ॥६८॥

मनुस्मृति अध्याय ६

अर्थ—जीवात्माओं को अधर्मकारण दुःख होने का और धर्म जिस कारण ऐसा अर्थ ब्रह्म का साक्षात् होना उससे उत्पन्न मोक्षरूप अक्षय ब्रह्म सुख के मिलने का चिंतवन करे ॥ ६४ ॥ योग से अर्थात् विषयों से चित्त की वृत्ति के रोकने से परमात्मा के स्थूल शरीर आदि की अपेक्षा से सब के अन्तर्यामी भावसे सूक्ष्मतया अर्थात् अवयव रहित होने का उसके

त्याग से ऊंच नीच देव पशु आदि शरीरों में जीवों के शुभअशुभ फल भोगने के लिये उत्पन्न होने का चिंतवन करे ॥ ६५ ॥ जिस किसी आश्रम में स्थित उस आश्रम के विरुद्ध आचार से दूषित होने पर भी और आश्रम के चिह्नों से रहित भी सब भूतों में ब्रह्म बुद्धि से समान दृष्टि होता हुआ धर्म को करे दंड आदि चिह्नों को धारण करना ही धर्म का कारण नहीं है किंतु शास्त्र में कहे हुए का करना यह धर्म की मुख्यता दिखाने के लिए कहा है कुछ दंड आदि चिह्नों के त्यागने के लिये नहीं कहा है ॥ ६६ ॥ यद्यपि निर्मली के वृक्ष का फल जल को निर्मल करने वाला है तब भी उसके नाम लेने से जल निर्मल नहीं होता है किन्तु फल के डालने से ऐसे ही केवल चिह्न धारण करना ही धर्म का कारण नहीं है किन्तु कहे हुए का करना ॥ ६७ ॥ शरीर को दुःख होने पर भी छोटी चीटी आदि की रक्षा के लिए रात्रि में अथवा दिन में सदा भूमि को देख कर विचरे ॥६८॥

दह्यन्ते ध्मायमानानां धातूनां हि यथा मलाः ।
तथेन्द्रियाणां दह्यन्ते दोषाः प्राणस्य निग्रहात् ॥७१॥

मनु० अ० ६

अर्थ—जैसे घरिया में रख कर तपाने से सुवर्ण आदि सब धातुओं के मल जल जाते हैं ऐसे ही प्राणायाम के करने से इन्द्रियों के सब दोष भस्म हो जाते हैं ॥ ७१ ॥

उच्चा वचेषु भूतेषु दुर्ज्ञेयामकृतात्मभिः ।
ध्यानयोगेन संपश्येद्गतिमस्यान्तरात्मनः ॥७३॥
सम्यग्दर्शनसंपन्नः कर्मभिर्ननिबध्यते ।

दर्शनेन विहीनस्तु संसारं प्रतिपद्यते ॥७४॥

मनु० अ० ६

अर्थ—शास्त्र से जिन का अन्तःकरण संस्कारयुक्त नहीं है ऐसे पुरुषों द्वारा दुःख से जानने योग्य ऐसी इस जीव की ऊंच नीच देव पशु आदि में जन्म की प्राप्ति को ध्यान के योग से कारण सहित भली भांति जाने तिस पीछे ब्रह्मज्ञान में निष्ठ हो ॥ ७३ ॥ तत्त्व से ब्रह्म का साक्षात् करने वाला पुरुष कर्मों में नहीं बंधता है और कर्म उस के पुनर्जन्म के लिए समर्थ नहीं होते हैं कारण यह है कि पहले इकट्ठे किए हुए पाप पुण्य का ब्रह्म ज्ञान से नाश हो जाता है और दर्शन जो ब्रह्म का साक्षात् करना है उस से रहित संसार अर्थात् जन्म मरण के प्रबन्ध को प्राप्त होता है ॥७४॥

जराशोकसमाविष्टं रोगायतनमातुरम् ।

रजस्वलमनित्यं च भूतावासमिमंत्यजेत् ॥७७॥

मनु० अ० ६

अर्थ—बुढ़ापा तथा शोक से युक्त और नाना प्रकार के रोगों का स्थान और आतुर अर्थात् क्षुधा पिपासा शीत उष्ण आदि में घबराने वाला तथा रजोगुण से युक्त और अनित्य अर्थात् नाश होने वाले और पृथिवी आदि पांच भूतों से बने हुए इस आवास अर्थात् जीव के घररूप देह को छोड़ दे जिससे फिर देह न धारण करनी पड़े सो करे ॥७७॥

धृतिः क्षमा दमो ऽस्तेयं शौचमिंद्रियनिग्रहः ।

धीर्विद्या सत्यमक्रोधो दशकं धर्मलक्षणम् ॥९२॥

मनु० अ० ६

अर्थ—धृति अर्थात् सन्तोष और क्षमा अर्थात् दूसरे के

अपकार करने पर भी उसका बदले का अपकार न करना और दम अर्थात् विकार के कारण विषय के निकट होने पर भी मन का नहीं बिगड़ना और अस्तेय अर्थात् अन्याय से पराये धन का न लेना और शौच अर्थात् मट्टी तथा जल से देह को शुद्ध करना और इन्द्रिय निग्रह अर्थात् विषयों से चक्षु (आंख) आदि को रोकना और धी अर्थात् शास्त्र आदि के तत्त्व का ज्ञान और विद्या अर्थात् आत्म ज्ञान और सत्य अर्थात् यथार्थ (ठीक) कहना और अक्रोध अर्थात् क्रोध का कारण होने पर भी क्रोध न होना यह दश प्रकार का धर्म का स्वरूप है ॥६२॥

तस्य सर्वाणि भूतानि स्थावराणि चराणि च ।
भयाद्भोगाय कल्पन्ते स्वधर्मान्न चलन्ति च ॥१५॥

मनु० अ० ७

अर्थ—उस दंड के भय से स्थावर जंगम सब प्राणी भोग करने को समर्थ होते हैं और जो दंड न होता तो बलवान् दुर्बल के धन दारा आदि के लेने में और उस से बलवान् को उस के तो किसी का भी भोग सिद्ध न होता और वृक्ष आदि स्थावरों के काटने में भोग की सिद्धि न होती तैसे ही सज्जनों को भी नित्य नैमित्तिक अपने धर्म का करना योग्य हुआ न करने में यमयातना दंड के भय से ही ॥१५॥

दण्डः शास्ति प्रजाः सर्वा दण्ड एवाभिरक्षति ।
दण्डः सुप्तेषु जागर्ति दण्डं धर्मं विदुर्बुधाः ॥१८॥

मनु० अ० ७

अर्थ—दंड सब प्रजाओं का शासन करता है और दंड ही सब प्रजाओं की रक्षा करता है और सब के सोने पर

दंड ही जागता है अर्थात् उस के भय से चोर आदि नहीं आते हैं और दंड ही को धर्म का कारण होने से धर्म जानते हैं यहां कार्य में कारण का उपचार और इस लोक तथा परलोक के धर्म दंड ही के भयसे किये जाते हैं ॥१८॥

तस्याहुः संप्रणेतारं राजानं सत्यवादिनम् ।
समीक्ष्यकारिणं प्राज्ञं धर्मकामार्थकोविदम् ॥२६॥

मनु० अ० ७

अर्थ—सत्य बोलने वाले और विचार के करने वाले तथा तत्त्व अतत्त्व के विचार में उचित बुद्धि से शोभायमान और धर्म अर्थ काम के जानने वाले अभिषेक आदि गुणों से युक्त राजा को मनु आदि दंड का प्रवर्तक अर्थात् चलाने वाला कहते हैं ॥२६॥

वेनो विनष्टोऽविनयान्नहुषश्चैव पार्थिवः ।
सुदाः पैजवनश्चैव सुमुखो निमिरेव च ॥४१॥
पृथुस्तु विनयाद्राज्यं प्राप्तवान्मनुरेव च ।
कुबेरश्च धनैश्वर्यं ब्राह्मण्यं चैव गाधिजः ॥४२॥
त्रैविद्येभ्यस्त्रयीं विद्यां दण्डनीतिं च शाश्वतीम् ।
आन्वीक्षिकीं चात्मविद्यां वार्तारम्भांश्च लोकतः ॥४३॥
इन्द्रियाणां जये योगं समातिष्ठेद्दिवानिशम् ।
जितेन्द्रियो हि शक्नोति वशे स्थापयितुं प्रजाः ॥४४॥
दश कामसमुत्थानि तथाष्टौ क्रोधजानि च ।
व्यसनानि दुरन्तानि प्रयत्नेन विवर्जयेत् ॥४५॥
कामजेषु प्रसक्तो हि व्यसनेषु महीपतिः ।

वियुज्यतेऽर्थधर्माभ्यां क्रोधजेष्वात्मनैव तु ॥४६॥
मृगयाक्षो दिवास्वप्नः परिवादः स्त्रियो मदः।
तौर्यत्रिकं वृथाटया च कामजो दशको गुणः ॥४७॥
पैशुन्यं साहसं द्रोहं ईर्ष्यासूयार्थ दूषणम्।
वाग्दण्डजं च पारुष्यं क्रोधजोऽपि गणोऽष्टकः ॥४८॥
द्वयोरप्येतयोर्मूलं यं सर्वे कवयो विदुः।
तं यत्नेन जयेल्लोभं तज्जावेतावुभौ गणौ ॥४९॥
पानमक्षाः स्त्रियश्चैव मृगया च यथा क्रमम्।
एतत्कष्टतमं विद्याच्चतुष्कं कामजे गणे ॥५०॥
दण्डस्य पातनं चैव वाक्पारुष्यार्थ दूषणे।
क्रोधजेऽपि गणे विद्यात्कष्टमेतत्त्रिकं सदा ॥५१॥
सप्तकस्यास्य वर्गस्य सर्वत्रैवानुषङ्गिणः।
पूर्वं पूर्वं गुरुतरं विद्याद्व्यसनमात्मवान् ॥५२॥
व्यसनस्य च मृत्योश्च व्यसनं कष्टमुच्यते।
व्यसन्यधोऽधोव्रजति स्वर्यात्यव्यसनी मृतः ॥५३॥

मनु० अ० ७

अर्थ—वेन तथा नहुष राजा भी और पिजवन का पुत्र सुदा नाम तथा सुमुख और निमि यह अविनय से नाशको प्राप्त हुए ॥ ४१ ॥ पृथु तथा मनुने विनय से राज्य पाया और कुवेर विनय से धन के स्वामी हुए और गाधिके पुत्र विश्वामित्र ने क्षत्रिय होने पर भी उसी शरीर से ब्राह्मणत्व पाया ॥ ४२ ॥ त्रिवेदीरूप विद्या के जानने वाले ब्राह्मणों से तीनों वेदों को ग्रन्थ से तथा अर्थसे अभ्यास करे और शाश्वती अर्थात् सदा

से चली आई हुई नीति विद्या जो अर्थशास्त्र है उसको उसके जानने वालों से सीखे तथा युक्ति और प्रत्युत्तर में सहायता देनेवाली आन्वीक्षिकी अर्थात् तर्क विद्या को तथा उदय और दुःख में हर्ष विषादको शान्त करने वाली ब्रह्म विद्याको सीखे और वाणिज्य पशुपालन आदि वार्त्ता को उसके आरम्भ धन के उपायार्थों को जानने वाले कर्षक आदिकों से सीखे ॥ ४३॥ चक्षु आदि इन्द्रियों को विषयों में आसक्त होने से रोकने में सदा यत्न करे क्योंकि जितेन्द्रिय राजा सदा प्रजाओं को वश में रखने के लिये समर्थ होता है ॥ ४४ ॥ आदि में सुख और अन्त में दुःख देनेवाले दश कामके और आठ क्रोधके व्यसनों को यत्न से त्याग करे ॥ ४५ ॥ जिससे कामके व्यसनोंमें प्रसक्त अर्थात् लगा हुआ राजा धर्म तथा अर्थ से हीन हो जाता है और क्रोध के व्यसनों में प्रसक्त प्रकृति कोप से देह के नाश को प्राप्त होता है ॥ ४६ ॥ उन व्यसनों को नाम से दिखाते हैं मृगया अर्थात् अहेर और अक्ष अर्थात् जुआ खेलना और सब कामों की नाश करने वाली दिनकी नींद और पराये दोष का कहना तथा स्त्री का भोग और मद्यपानसे उत्पन्न मद और तौर्यत्रिक अर्थात् नाचना गाना बजाना आदि और वृथा भ्रमण करना यह दश गण काम जो सुख की इच्छा है उससे उत्पन्न हैं ॥ ४७ ॥ पैशुन्य अर्थात् अज्ञात दोष का प्रगट करना और साहस अर्थात् बन्धन आदि से दण्ड देना और द्रोह अर्थात् छल से मारना और ईर्ष्या अर्थात् दूसरे के गुणों का न सहना और असूया अर्थात् पराये गुणोंमें दोषोंका प्रगट करना और अर्थ दूषण अर्थात् द्रव्यका ले लेना तथा देने योग्य को न देना और वाग् दंड अर्थात् गाली देना और पारुष्य अर्थात् ताडना आदि यह आठका गण क्रोध से उत्पन्न जानिये ॥ ४८ ॥ जिस को काम से तथा क्रोध से उत्पन्न व्यसनों के गण का

कारण स्मृतियोंके वनानेवाले जानते हैं उन व्यसनोंके कारण रूप लोभ को यत्न से त्याग करे जिस से ये दोनों गण लोभ से उत्पन्न होते हैं कहीं धनके लोभसे और कहीं दूसरे प्रकार के लोभ से ॥ ४६॥ मद्यका पीना पांसोंसे खेलना स्त्री का भोग और मृगया अर्थात् अहेर (शिकार खेलना) क्रम से पढ़े हुए ये चार काम से उत्पन्न व्यसनों में से वहुत दोषयुक्त होने से इन चारों को अतिशय करके दुःखका कारण जाने ॥ ५० ॥ क्रोध से उत्पन्न व्यसनों के गण में दंड देना वाणीकी कठोरता तथा अर्थ दूषण इन तीनों को वहुत दोष युक्त होनेसे सदा अधिक दुःख देनेवाले जाने ॥ ५१ ॥ काम तथा क्रोध से उत्पन्न इस मद्यपान आदि सात व्यसनों के गण जो सव राज मंडल में वहुधा स्थित हैं उनमें से प्रशस्त चित्तवाला राजा पहले पहले को अगले अगले से अति कठिन जाने सोई कहते हैं जैसे जुआ से मद्यका पीना अतिकष्ट देनेवाला है क्योंकि मद्यपीने से संज्ञा न रहने के कारण इच्छा पूर्वक चेष्टा करनेसे देह धन आदिके विगाड़ने वाले दोष होते हैं और जुआ में तो धन आता है अथवा जाता है और स्त्री व्यसन से जुआ अतिकष्ट का देने वाला है जुआमें वैरका उत्पन्न होना आदि नीतिशास्त्र के कहे हुए दोष होते हैं और मूत्र पुरीष आदि वेगोंके रोकने से रोग की उत्पत्ति होती है और स्त्री व्यसन में फिर सन्तान की उत्पत्ति आदि गुणों का योग भी है और मृगया तथा स्त्री का व्यसन इन दोनों में स्त्री व्यसन दुष्ट है उस में कार्यों का नहीं देखना और कालके उल्लंघन करनेसे धर्मलोप आदि दोष होते हैं और मृगया में तो श्रम करने से आरोग्य आदि गुणों का भी योग है इस प्रकार काम से उत्पन्न चार व्यसनों के गण में पहला पहला भारी दोषयुक्त है और क्रोध से उत्पन्न

वाक्पारुष्य आदि में वाक्पारुष्य से दंडपारुष्य दुष्ट है क्योंकि अंगच्छेद आदि का समाधान नहीं हो सकता है और वाक्पारुष्य में तो दान मानरूप पानी के छिड़कने से क्रोधरूप अग्नि की शान्ति हो सकती है और अर्थ दूषण से वाक्पारुष्य दोषयुक्त तथा मर्मस्थान को पीड़ा देनेवाला है क्योंकि वाक्पारुष्य की चिकित्सा अतिकठिन है सोई कहा है "न प्ररोहति वाक्कृतं" अर्थात् वाणी का किया हुआ फिर नहीं ऊगता है अर्थ दूषण का तो बहुतसा धन देनेसे समाधान हो सकता है इस भान्ति क्रोधज तीन व्यसनों में पहला पहला अतिदुष्ट है इस से इसको यत्न से त्याग दे ॥ ५२ ॥ ऊपर कहे हुए व्यसन और मृत्यु के इसमें से व्यसन बहुत दुःखद है कारण व्यसनी मनुष्य व्यसन से नीचे नीचे बहुत नरक में जाता है और निर्व्यसनी मरा हुआ ऊपर स्वर्ग में जाता है ॥ ५३ ॥

धर्मज्ञं च कृतज्ञं च तुष्टप्रकृतिमेव च ।
अनुरक्तं स्थिरारम्भं लघुमित्रं प्रशंस्यते ॥२०९॥
प्राज्ञं कुलीनं शूरं च दक्षं दातारमेव च ।
कृतज्ञं धृतिमन्तं च कष्टमाहुररिं बुधाः ॥२१०॥

मनु० अ० ७

अर्थ—धर्म का जानने वाला तथा किए हुए उपकार का जानने वाला और जिस की प्रकृति अर्थात् स्वभाव संतोषयुक्त हो ऐसा और प्रीति करने वाला और जिन के आरम्भ स्थिर हैं ऐसे कामों का करने वाला मित्र प्रशस्त अर्थात् उत्तम है ॥ २०९ ॥ विद्वान् कुलीन शूर चतुरदाता किये को जानने वाला और धीरज वाला अर्थात् सुख दुःख में एक रूप ऐसे शत्रु को पंडित दुरुच्छेद अर्थात् दुःख से उखाड़ने योग्य कहते

हैं इस कारण ऐसे शत्रु के साथ मिलाप करना चाहिये ॥२१०॥

आपदर्थं धनं रक्षेद्दारान् रक्षेद्धनैरपि ।

आत्मानं सततं रक्षेद्दारैरपि धनैरपि ॥२१३॥

मनु० अ० ७

अर्थ—आपत्ति निवारण करने के लिए धन की रक्षा करनी चाहिए और धन के परित्याग से भी स्त्री की रक्षा करनी चाहिए और अपनी फिर स्त्री तथा धन के त्याग से भी रक्षा करे ॥२१३॥

धर्म एव हतो हन्ति धर्मो रक्षति रक्षितः ॥

तस्माद्धर्मो न हन्तव्यो मा नो धर्मो हतोऽवधीत् ॥१५

मनु० अ० ८

अर्थ—अतिक्रमण किया हुआ अर्थात् न माना हुआ धर्म ही इष्ट अनिष्ट समेत नाशकर देता है अर्थी प्रत्यर्थी आदि नहीं वही धर्म अनतिक्रान्त अर्थात् माना हुआ इष्ट अनिष्टों समेत रक्षा करता है इस लिए धर्म का अतिक्रमण न करना चाहिये अतिक्रमण किया हुआ धर्म तुम समेत हम को न मारे सभासदों के कुमार्ग में प्रवृत्त होने पर यह प्राड्विवाक का सम्बोधन है अथवा जो यह निषेध अर्थ में अव्यय है तो नो हतो धर्मो मावधीत अर्थात् नहीं अतिक्रमण किया हुआ धर्म नहीं मारता है यह अभिप्राय है ॥१५॥

एक एव सुहृद्धर्मो निधनेऽप्यनुयाति यः ।

शरीरेण समं नाशं सर्वमन्यद्धि गच्छति ॥१७॥

मनु० अ० ८

अर्थ—धर्म ही एक मित्र है जो मरने के समय भी वांछित फल देने के लिए साथ जाता है और सब स्त्री पुत्र शरीर ही के

साथ नाश को प्राप्त होते हैं तिस से पुत्र आदि के स्नेह की अपेक्षा से भी धर्म न छोड़ना चाहिये ॥१७॥

आकारैरिङ्गितैर्गत्या चेष्टया भाषितेन च ।
नेत्रवक्त्रविकारैश्च गृह्यतेऽन्तर्गतं मनः ॥२६॥

मनु० अ० ८

अर्थ—पहले कहे हुए आकार आदि से और गति से अर्थात् पैरों के ठीक न रखने से चेष्टा से बोलने से और नेत्र तथा मुख के विकार से मन की भीतरी बात जानी जाती है॥

सत्येन पूयते साक्षी धर्मः सत्येन वर्धते ।
तस्मात्सत्यं हि वक्तव्यं सर्ववर्णेषु साक्षिभिः ॥८३॥
आत्मैव ह्यात्मनः साक्षी गतिरात्मा तथात्मनः ।
मावमंस्थाः स्वमात्मानं नृणां साक्षिणमुत्तमम् ॥८४॥
मन्यन्ते वै पापकृतो न कश्चित्पश्यतीति नः ।
तांस्तु देवाः प्रपश्यंति स्वस्यैवान्तरपूरुषः ॥८५॥
द्यौर्भूमिरापो हृदयं चन्द्रार्काग्नियमानिलाः ।
रात्रिः संध्ये च धर्मश्च वृत्तज्ञाः सर्वदेहिनाम् ॥८६॥

मनु० अ० ८

अर्थ—साक्षी सत्य कहने से पूर्व जन्म में भी इकट्ठे किए हुए पाप से छूट जाता है और सत्य कहने से इसका धर्म बढ़ता है तिस से सर्व वर्ण के विषय में साक्षी को सत्य कहना चाहिए ॥ ८३ ॥ शुभाशुभ कर्मों में स्थित आत्मा ही अपना रक्षक है तिस से मनुष्यों के मध्य में उत्तम साक्षी आत्मा का झूठ बोलने से तिरस्कार न करे ॥ ८४ ॥ पाप करने वाले ऐसा जानते हैं कि अधर्म करने में हमें कोई नहीं देखता

है परन्तु उन को आगे कहे हुए देखते हैं और अपना अन्त-रात्मा पुरुष देखता है ॥ ८५ ॥ द्युलोक, पृथिवी, जल, हृदय में स्थित जीव, चन्द्रमा, सूर्य, अग्नि, यम, पवन, रात्रि और दोनों संध्या और धर्म यह सब देहधारियों के शुभाशुभ कर्म को जानते हैं ॥८६॥

एकोऽहमस्मीत्यात्मानं यत्त्वं कल्याण मन्यसे ।
नित्यं स्थितस्ते हृद्येष पुण्यपापेक्षिता मुनिः ॥९१॥
यमो वैवस्वतो देवो यस्तवैष हृदि स्थितः ।
तेन चेदविवादस्ते मा गङ्गां मा कुरून् गमः ॥९२॥

मनु० अ० ८

अर्थ—हे भद्र ! मैं जीवात्मक एक ही हूं यह जो तुम आप को मानते हो तो ऐसा मत मानो क्योंकि पापों और पुण्यों का देखने वाला मुनि अर्थात् सर्वज्ञ परमात्मा सदा तुम्हारे हृदय में स्थित है ॥ ९१ ॥ सब के संयमन से यम और दंडधारी होने से वैवस्वत और क्रीडा करने से देव जो यह तुम्हारे हृदय में स्थित है उस के साथ यथार्थ कहने से जो तुम्हारा विवाद न हो जब तुम्हारे मनोगत को यह और प्रकार से जानता है और तुम और प्रकार से कहते हो अन्तर्यामी के साथ तुम्हारा विरोध होगा इस से सत्य कहने ही से पाप रहित और कृतकृत्य हो पाप दूर करने के लिए गंगा तथा कुरुक्षेत्र को मत जाओ ॥ ९२ ॥

यमिद्धो न दहत्यग्निरापो नोन्मज्जयन्ति च ।
न चार्तिमृच्छति क्षिप्रं स ज्ञेयः शपथे शुचिः ॥११५
वत्सस्य ह्यभिशप्तस्य पुरा भ्रात्रा यवीयसा ।

नाग्निर्ददाह रोमापि सत्येन जगतः स्पृशः ॥११६॥

मनु० अ० ८

अर्थ—जिस को प्रकाशमान अग्नि न जलावे और जल जिस को ऊपर को न उछाले और जो बड़ी पीड़ा को न प्राप्त हो वह शपथ में शुद्ध जानना चाहिये ॥ ११५ ॥ पहले समय में वत्स नाम ऋषि को छोटे भाई ने यह दोष लगाया कि तू ब्राह्मण नहीं है शूद्रका पुत्र है इसके शपथके लिये अग्नि में घसे हुए उस ऋषि के रोमको भी अग्नि ने सत्य के कारण से नहीं जलाया ॥ ११६ ॥

कामक्रोधौ तु संयम्य योऽर्थान् धर्मेण पश्यति ।
प्रजास्तमनुवर्तन्ते समुद्रमिव सिन्धवः ॥१७५॥

मनु० अ० ८

अर्थ—जो राजा रागद्वेष को छोड़ कर धर्म से कार्यों को देखता है उस राजाको प्रजा ऐसे सेवन करती है जैसे समुद्र को नदियां अर्थात् नदियां जैसे समुद्रसे नहीं लौटती हैं उसी के साथ एकता को प्राप्त होती हैं प्रजा भी ऐसे ही राजा की अनुगामिनी होती है ॥ १७५ ॥

नान्यदन्येन संसृष्टरूपं विक्रयमर्हति ।
न चासारं न च न्यूनं न दूरेणातिरोहितम् ॥२०३॥

मनु० अ० ८

अर्थ—केशर आदि द्रव्यों में कुसुम आदि मिला कर न बेचना चाहिये और असार को सार कह कर न बेचे और तराजु आदि में कमती न तोले और पीठ पीछे न बेचे और प्रीति से रक्खे हुए द्रव्य को न बेचे बिना स्वामी के विक्रयके समान होने से बिना स्वामी के बेचने ही का दण्ड होता है ॥ २०३ ॥

किञ्चिदेव तु दीप्यः स्यात्संभाषां ताभिराचरन् ।
प्रैष्यासु चैकभक्तासु रहः प्रव्रजितासु च ॥३६३॥

मनु० अ० ८

अर्थ—शून्यस्थान में चारण और आत्मोपजीविकी स्त्रियों से वातचीत करता हुआ पुरुष राजा से थोड़ासा दण्ड का लेश दिलाने योग्य है क्योंकि वेभी परदारा हैं तथा रुकी हुई दासियों से और बौद्ध आदि की ब्रह्मचारिणियों से संभाषण करता हुआ कुछ दंड मात्र देने योग्य होता है ॥ ३६३ ॥

गर्भिणी तु द्विमासादिस्तथा प्रव्राजितो मुनिः ।
ब्राह्मणा लिङ्गिनश्चैव न दाप्यास्तारिकं तरे ॥४०७॥

मनु० अ० ८

अर्थ—दो महीनोंके उपरान्तकी गर्भिणी स्त्री तथा सन्यासी मुनि वानप्रस्थ ब्राह्मण और ब्रह्मचारी ये (नाव में वैठने का) पार उतरने में उतराई का मूल्य न देवें ॥ ४०७ ॥

पिता रक्षति कौमारे भर्ता रक्षति यौवने ।
रक्षन्ति स्थविरे पुत्राः न स्त्री स्वातन्त्र्यमर्हति ॥३॥

मनु० अ० ९

१—"प्रव्रजितासु" शब्द की हिन्दी भाषा करने वाले बौद्ध आदि की ब्रह्मचारिणियों से संभाषण करना इत्यादि अर्थ लिखते हैं .इस से स्वतः ही सिद्ध होता है कि-उक्तस्मृतिकार के पहले बौद्धधर्म विद्यमान था और आदि शब्द से भाषाकार ने जैनमत स्वीकार किया है किन्तु सर्वशास्त्रीय प्रमाणों से भली प्रकार से सिद्ध हो चुका है कि-बौद्धमत जैनमत से पीछे निकला है इतना ही नहीं किन्तु बौद्धमत के प्रामाणिक ग्रन्थों में जैनमत विषय उल्लेख किया हुआ है तथा जैनमत के शास्त्रों में दीक्षा का अपर नाम प्रव्रजिन "पव्वइय" ऐसा पाठ पुनः २ आता है ।

अर्थ—विवाह से पहले स्त्री की पिता रक्षा करता है पीछे तरुण अवस्था में भर्ता रक्षा करता है उसके अभाव में पुत्र उस से स्त्री किसी अवस्था में स्वतन्त्र न हो और जिस के पति पुत्र नहीं हैं उसकी पिता आदि भी रक्षा करते हैं ॥ ३ ॥

पानं दुर्जनसंसर्गः पत्या च विरहोऽटनम् ।
स्वप्नोऽन्यगेहवासश्च नारीसंदूषणानि षट् ॥१३॥

मनु० अ० ६

अर्थ—मद्य पीना असत्पुरुषों का संसर्ग पति से वियोग भ्रमण करना कुसमय में सोना पराये घरमें रहना ये छः स्त्री के व्यभिचार दोष के उत्पन्न करने वाले हैं इस कारण ये इन से रक्षा करने योग्य हैं ॥ १३ ॥

उत्पादनमपत्यस्य जातस्य परिपालनम् ।
प्रत्यहं लोकयात्रायाः प्रत्यक्षं स्त्रीनिबन्धनम् ॥२७॥

मनु० अ० ६

अर्थ—सन्तान का उत्पन्न करना और उत्पन्न हुए का पालना और प्रतिदिन अतिथि मित्र आदि का भोजन आदि लोक में व्यवहार की प्रत्यक्षभार्या ही कारण है ॥ २७ ॥

पतिं या नाभिचरति मनोवाग्देहसंयता ।
सा भर्तृलोकानाप्नोति सद्भिः साध्वीति चोच्यते २६
व्यभिचारात्तु भर्तुः स्त्री लोके प्राप्नोति निन्द्यताम् ।
शृगालयोनिं चाप्नोति पापरोगैश्च पीड्यते ॥३०॥

मनु० अ० ६

अर्थ—जो स्त्री मन वाणी तथा देहके संयत हो मन वाणी तथा देह से व्यभिचार को नहीं प्राप्त होती है वह पति के साथ

अर्जन किये हुए स्वर्ग आदि लोकों को प्राप्त होती है और इस लोक में सज्जनों द्वारा साध्वी कही जाती है ॥ २६ ॥ दूसरे पुरुष के योग से लोक में निंदा को और दूसरे जन्म में स्यारी की योनि को पाती है और क्षय रोग आदि से पीड़ित होती है स्त्रीधर्म कह भी चुके परन्तु ये दो श्लोक उत्तम संतान के निमित्त हैं इस कारण बहुत प्रयोजन को जान फिर पढ़े ॥

नोद्वाहिकेषु मन्त्रेषु नियोगः कीर्त्यते क्वचित् ।
न विवाहविधावुक्तं विधवावेदनं पुनः ॥६५॥

मनु० अ० ६

अर्थ—"अर्य्यमणंनु देवं" इत्यादिक विवाह के मन्त्रों में किसी शास्त्र में नियोग नहीं कहा है और न ही कहीं विवाह का विधान करने वाले शास्त्रों में दूसरे पुरुष के साथ विवाह कहा है ॥ ६५ ॥

द्यूतमेतत्पुरा कल्पे दृष्टं वैरकरं महत् ।
तस्माद्द्यूतं न सेवेत हास्यार्थमपि बुद्धिमान् ॥२२७॥
प्रच्छन्नं वा प्रकाशं वा तन्निषेवेत यो नरः ।
तस्य दण्डविकल्पः स्याद्यथेष्टं नृपतेस्तथा ॥२२८॥

मनुस्मृति अध्याय ६

अर्थ—अभी ही नहीं किन्तु पहले कल्प में भी यह द्यूत अतिशय कर वैर कराने वाला देखा गया है इससे बुद्धिमान् हंसी के लिये भी उसका सेवन न करे ॥ २२७ ॥ जो मनुष्य उस द्यूत का गुप्त अथवा प्रगट सेवन करता है उस को जैसी राजा की इच्छा हो वैसा दण्ड हो ॥ २२८ ॥

*पौण्ड्रकाश्चौड्रद्रविडाः काम्बोजायवनाः शकाः ।
पारदाः पह्लवाश्चीनाः किराताः दरदाः खशाः ॥४४॥
मनुस्मृति अध्याय १०

अर्थ—पौंड्रक (मेदिनीपुर परदेश) ओड्र (कटक) द्रविड (पूर्वीघाट) काम्बोज (अरब) यवन (मक्का) शक (टरकी) पारद (महाचीन) पह्ल (काबुल) चीन, किरात (देश विशेष) दरद (दार्जलिंग) खश (ईरान) यह सब क्रिया के लोप से शूद्रता को प्राप्त हुए ॥४४॥

सर्वान्रसान पोहेत कृतान्नं च तिलैः सह ।
अश्मनो लवणं चैव पशवो ये च मानुषाः ॥८६॥
सर्वं च तान्तवं रक्तं शाणक्षौमाविकानिच ।
अपि चेत्स्युररक्तानि फलमूले तथौषधीः ॥ ८७ ॥
अपः शस्त्रं विषं मांसं सोमं गन्धांश्च सर्वशः ।
क्षीरं क्षौद्रं दधि घृतं तैलं मधु गुडं कुशान् ॥८८॥
आरण्यांश्च पशून्सर्वान्दंष्ट्रिणश्च वयांसि च ।
मद्यं नीलीं च लाक्षां च सर्वांश्चैकशफांस्तथा ॥८९॥
मनुस्मृतिः अध्याय १०

अर्थ—उन वर्जनीय वस्तुओं को कहते हैं सब रसों को तथा सिद्ध अन्न अर्थात् पूरी आदि, तिल, पाषाण, नोनपशु मनुष्य इन सब को न वेचे । ८६ ॥ सब तागों से बने वस्त्र कुसुम आदि से रंगे हुए न वेचे और सन तथा अलसी के

---

* उक्त देशों के नामों से यह भली भांति सिद्ध हो जाता है कि उक्त स्मृतिकार के समय उक्त देश भली भांति विद्यमान थे तब ही तो उक्त देशोंके नाम उक्त श्लोक में ग्रहण किए गए हैं ।

तागों से बने हुए तथा भेड़ के रोमों से बने हुए चाहे लाल भी न हो तिस पर भी न बेचे, तैसे ही फल मूल और गुड्ची आदि को न बेचे ॥ ८७ ॥ जस्त, लोह, विष, मांस, सोम, दूध दही, घी, तेल, गुड, डाभ और सुगन्ध युक्त सब कपूर आदि माक्षिक (शहद) मोम इन सब को न बेचे ॥ ८८ ॥ सब जंगली पशु हाथी घोड़ा आदि और दंष्ट्री अर्थात् सिंह आदि और पक्षी मद्य लाख और एक खुर वाले घोड़ा आदिकों को न बेचे ॥ ८९ ॥

यस्य कायगतं ब्रह्म मद्येनाप्लाव्यते सकृत् ।
तस्य व्यपैति ब्राह्मण्यं शूद्रत्वं च स गच्छति ॥९८॥

मनुस्मृति अध्याय ११

अर्थ—जिस ब्राह्मण के शरीर में स्थित वेद अर्थात् संस्कार रूप से स्थित एक बार भी मद्य से डुबाये जाएं अर्थात् एक बार भी जो ब्राह्मण मद्य पीता है उसका ब्राह्मणत्व चला जाता है और वह शूद्रता को प्राप्त होता है इस कारण सर्वथा मद्य न पीना चाहिये ॥ ९८ ॥

कृत्वा पापं हि संतप्य तस्मात्पापात्प्रमुच्यते ।
नैव कुर्यात्पुनरिति निवृत्त्या पूयते तु सः ॥ २३१ ॥
एवं संचिन्त्य मनसा प्रेत्य कर्मफलोदयम् ।
मनोवाङ् मूर्तिभिर्नित्यं शुभं कर्म समाचरेत् ॥२३२॥

मनुस्मृति अध्याय ११

अर्थ—पाप को करके पीछे सन्ताप युक्त होने से उस पाप से छूट जाता है जब पश्चात्ताप युक्त हो ऐसे कहता है कि मैं फिर कभी ऐसा न करूंगा तब तो उस पाप से बहुत ही पवित्र होता है ॥ २३१ ॥ इस प्रकार शुभ अशुभ कर्मों के

परलोक में इष्ट अनिष्ट फल को मन से विचार कर मन, वाणी और शरीर से सब शुभ ही करे क्योंकि उसका फल इष्ट है और नरक आदि दुःख का कारण होने से अशुभ कर्म न करे ॥ २३२ ॥

तपोमूलमिदं सर्वं दैवं मानुषकं सुखम्
तपोमध्यं बुधैः प्रोक्तं तपोऽन्तं वेददर्शिभिः ॥२३५॥
ब्राह्मणस्य तपो ज्ञानं तपः क्षत्रस्य रक्षणम् ।
वैश्यस्य तु तपो वार्ता तपः शूद्रस्य सेवनम् ॥२३६॥

मनुस्मृति अध्याय ११

अर्थ—इन सब देवताओं और मनुष्यों के सुख का कारण तप ही है और तप ही से उसकी स्थिति है और तप ही मध्य है यह पण्डितों ने कहा है और तप ही अन्त है यह वेद का अर्थ जानने वाले कहते हैं ॥ २३५ ॥ ब्राह्मण का ब्रह्मचर्य रूप जो वेदान्त का ज्ञान है वही तप है और क्षत्रिय का रक्षा करना तप है और वैश्य का खेती वाणिज्य और पशुओं की पालना आदि तप है और शूद्र का ब्राह्मण की सेवा तप है यह वर्ण विशेष से उत्कर्ष सूचन के लिये है ॥ २३६ ॥

कीटाश्चाहि पतङ्गाश्च पशवश्च वयांसि च ।
स्थावराणिच भूतानिदिवं यांति तपोबलात् ॥२४१॥
यत्किंचिदेनः कुर्वन्ति मनोवाङ्मूर्तिभिर्जनाः ।
तत्सर्वं निर्दहन्त्याशु तपसैव तपोधनाः ॥ २४२ ।.

मनुस्मृति अध्याय ११

अर्थ—कीड़े, पतंग, सांप, पशु, पक्षी और वृक्ष गुल्म आदि स्थावर आदि सब भूत तप के माहात्म्य से स्वर्ग को

जाते हैं, इतिहास आदिकों में कपोतों के उपाख्यान आदि में पक्षी अग्नि में प्रवेश आदि तप को करके और कीटों का उनकी जाति का स्वाभाविक दुःख का सहना तप है उससे क्षीण पाप हो विकार रहित जन्मान्तर में किये हुए सुकृत से स्वर्ग को जाते हैं ॥ २४१ ॥ मनुष्य मन, वाणी और देह से जो कुछ पाप करते हैं उन सब पाप को तपोधन तप ही से जला देते हैं ॥ २४२ ॥

शुभाशुभफलं कर्म मनोवाग्देहसंभवम् ।
कर्मजा गतयो नृणामुत्तमाधममध्यमाः ॥३ ।
तस्येह त्रिविधस्यापि त्र्यधिष्ठानस्य देहिनः ।
दशलक्षणयुक्तस्य मनो विद्यात्प्रवर्तकम् ॥४॥
परद्रव्येष्वभिध्यानं मनसानिष्टचिन्तनम् ।
वितथाभिनिवेशश्च त्रिविधं कर्म मानसम् ॥५॥
पारुष्यमनृतं चैव पैशुन्यं चापि सर्वशः ।
असंबद्धप्रलापश्च्य वाङ्मयं स्याच्चतुर्विधम् ॥६॥
अदत्तानामुपादानं हिंसा चैवाविधानतः ।
परदारोपसेवा च शारीरं त्रिविधं स्मृतम् ॥७॥
मानसं मनसैवायमुपभुङ्क्ते शुभाशुभम् ।
वाचा वाचा कृतं कर्म कायेनैव च कायिकम् ॥८॥
शरीरजैः कर्मदोषैर्याति स्थावरतां नरः ।
वाचिकैः पक्षिमृगतांमानसैरन्त्य जातिताम् ॥९॥
वाग्दण्डोऽथ मनोदण्डः कायदण्डस्तथैव च ।
यस्यैते निहिता बुद्धौ त्रिदण्डीति स उच्यते ॥१०॥

त्रिदण्ड मेतन्निक्षिप्य सर्वभूतेषु मानवः।
कामक्रोधौ तु संयम्य ततः सिद्धिं नियच्छति ॥११॥
मनु० अ० १२

अर्थ—मन वाणी देह जिस का कारण ऐसा सुख दुःख रूप फल का देने वाला विहित निषिद्ध रूप कर्म और उसी से उत्पन्न मनुष्य तिर्यक् आदि के भाव से उत्कृष्ट मध्यम और अधम की अपेक्षा मनुष्यों की गति अर्थात् जन्मान्तरों की प्राप्ति होती है ॥ ३ ॥ उस देह की कर्म की उत्कृष्ट मध्यम अधमता से तीन प्रकार के मन वाणी तथा काय के आश्रित और आगे कहे हुए दशलक्षणों से युक्त कर्मका मनही प्रवर्तक जानना चाहिये मन से संकल्प किया हुआ कहा जाता है और किया जाता है सोई तैत्तिरीय उपनिषद् में कहा है जैसे "तस्मात् यत्पुरुषो मनसाऽभिगच्छति तद्वाचा वदति तत्कर्मणा करोति" इति ॥ अर्थ-इससे पुरुष जिस को मनसे जानता है उसको वाणी से कहता है और कर्म से करता है ॥ ४ ॥ उन दश लक्षणों के कर्म दिखाने को कहते हैं ॥ कैसे कि, पराये धन को अन्याय से ले लो इस भान्ति सोचना और मन से ब्रह्म वध आदि की निषिद्ध इच्छा और परलोक नहीं है देह ही आत्मा है इस भान्ति तीन प्रकार का अशुभफल मानस कर्म ये तीनों और विपरीत बुद्धि तीन प्रकार का शुभफल मानस कर्म है ॥ ५ ॥अप्रियका कहना झूठ बोलना पीठ पीछे पराये दूषणों का कहना और सत्य भी राजा देश और पुर-वासियों की वार्ता आदि का विना प्रयोजन वर्णन करना इस भान्ति चार प्रकारका अशुभफल वाचिक कर्म होता है इससे विपरीत प्रिय सत्य और परगुणों का कहना और श्रुतिपुराण

आदि में राजा आदिकों के चरित्र का कहना शुभफल है ॥६॥ अन्याय करके पराये द्रव्यका हरण करना वेदादिक शास्त्रोंसे निषिद्ध हिंसा का करना और पराई स्त्री के साथ संभोग करना, इन तीन प्रकार का अशुभफल देनेवाला शारीर कर्म होता है और इन से विपरीत अर्थात् न्याय से द्रव्यका संग्रह करना वेदादिक शास्त्रों से यज्ञादिकों में विहित पशुओं की हिंसा करना और अपनी स्त्री के साथ ऋतुकाल में संभोग करना यह तीन प्रकारका शुभफल देनेवाला शारीरकर्म होता है ॥७॥ मन से जो सुकृत अथवा दुष्कृत कर्म किया है उसका फल सुखदुःखरूप इस जन्म में अथवा दूसरे जन्म में मन से ही यह भोगता है ऐसे वाणी से किया हुआ शुभ अशुभ वाणी के द्वारा मधुर, गद्गद बोलने आदि से और शरीर सम्बन्धी शुभ अशुभ शरीर के द्वारास्रक् चन्दन आदि प्रिया के उपभोग से व्याधित आदि होने से भोगता है इससे यत्न करके शरीर मानस और वाचिकधर्म रहित और धर्मजनक कर्मोंको छोड़े तथा करे॥८॥ यद्यपि पापिष्ठोंके शरीर, वाचिक और मानसिक ही तीन पाप होते हैं तिस पर भी वह जो बहुधा अधर्म ही करे धर्म थोड़ा करे तो बाहुल्य के अभिप्राय से यह व्याख्यान किया है जैसे अधिकता से शरीर के कर्मों से उत्पन्न पापों से युक्त मनुष्य स्थावरत्व को प्राप्त होता है और बाहुल्य से वाणी से किये हुओं से पक्षिभाव और मृग भाव को अथवा बाहुल्य से मन द्वारा किये हुओं से चांडाल आदि के भाव को प्राप्त होता है ॥ ६ ॥ वाणी का दंड, मनका दंड, तैसे ही काय दंड यह तीनों दंड जिसकी बुद्धि में स्थित हैं वह त्रिदंडी कहा जाता है और तीन दण्डों के धारणमात्र से त्रिदंडी नहीं होता ॥ १० ॥ इस निषिद्ध वाणी आदिकों का

सब भूतों की गोचरता से दमन करके और इन्हीं के दमनके लिये काम तथा क्रोध को रोककर उस पीछे मनुष्य मोक्ष प्राप्तिरूप सिद्धि को प्राप्त होता है ॥ ११ ॥

वेदाभ्यासस्तपो ज्ञानं शौचमिन्द्रियनिग्रहः ।
धर्मक्रियात्मचिन्ता च सात्त्विकं गुणलक्षणम् ॥२१॥
आरम्भरुचिता धैर्यमसत्कार्य परिग्रहः ।
विषयोपसेवा चाजस्रं राजसं गुणलक्षणम् ॥२२॥
लोभः स्वप्नोऽधृतिः क्रौर्यं नास्तिक्यं भिन्नवृत्तिता ।
याचिष्णुता प्रमादश्च तामसं गुणलक्षणम् ॥२३॥
मनु० अ० १२

अर्थ—वेद में अभ्यास और प्राजापत्य आदिका करना और शास्त्र के अर्थ का ज्ञान और मिट्टी जल आदि से शुद्धि और इन्द्रियों का रोकना दान आदि धर्मों का करना और आत्मा के ध्यान में तत्पर होना ये सत्वनाम गुण के कार्य हैं ॥ २१ ॥ फल के लिये कर्मों का करना और थोड़े भी अर्थ में व्याकुल होना और निषिद्ध कर्मोंका करना और सदा शब्द आदि विषयों का भोगना यह रज नाम गुणका कार्य है ॥२२॥ अधिक धन की इच्छा, अधिक सोना, कातरपन, क्रूरता और नास्तिक्य अर्थात् परलोक के न होने की बुद्धि और आचार का लोप और याचना का स्वभाव होना और प्रमाद अर्थात् सम्भव होने पर भी धर्म आदिकों में मन का न लगाना ये तामसनाम गुण के लक्षण हैं ॥ २३ ॥

देवत्वं सात्त्विका यान्ति मनुष्यत्वं च राजसाः ।

तिर्यक्त्वं तामसा नित्यमित्येषा त्रिविधा गतिः । ४०

मनु० अ० १२

अर्थ-जो सतोगुण की वृत्तिमें स्थित हैं वे देवत्वको प्राप्त होते हैं और जो रजोवृत्तिमें स्थित हैं वे मनुष्यत्व को और जो तमो वृति में स्थित हैं वे तिर्यग् योनि को प्राप्त होते हैं यह तीन प्रकार की जन्म की प्राप्ति है ॥ ४० ॥

इन्द्रियाणां प्रसंगेन धर्मस्यासेवनेन च ।

पापान्संयाति संसारान विद्वांसो नराधमाः ।५२॥

मनु० अ० १२

अर्थ—इन्द्रियों के विषय में लगनेसे और निषिद्ध आचरण से और प्रायश्चित्त आदि धर्मोंके न करने से मूढ़ मनुष्यों में नीच कुत्सित गतियों को प्राप्त होते हैं ॥ ५२ ॥

सर्वेषामपि चै तेषामात्मज्ञानं परं स्मृतम् ।

तद्ध्यग्र्यं सर्वविद्यानां प्राप्यते ह्यमृतं ततः ॥८५॥

मनु० अ० १२

अर्थ—इन वेदाभ्यास आदि सब में से उपनिषद् से कहा हुआ परमात्मा का ज्ञान उत्कृष्ट कहा है जिस से सब विद्याओं का प्रधान है इसी हेतु से कहते हैं कि जिससे उस के द्वारा मोक्ष मिलता है ॥ ८५ ॥

अज्ञेभ्यो ग्रन्थिनः श्रेष्ठा ग्रन्थिभ्यो धारिणो वराः ।

धारिभ्यो ज्ञानिनः श्रेष्ठा ज्ञानिभ्यो व्यवसायिनः ॥१०३॥

तपो विद्या च विप्रस्य निःश्रेयसकरं परम् ।

तपसा किल्बिषं हन्ति विद्ययाऽमृतमश्नुते ॥ १०४ ॥

मनुस्मृति अध्याय १२

अर्थ—जो थोड़ा पढ़े हैं वे अज्ञ हैं उनसे सम्पूर्ण वेद के पढ़ने वाले श्रेष्ठ हैं उनसे पढ़े हुए ग्रन्थ के धारण में समर्थ श्रेष्ठ हैं और धारण करने वालों से पढ़े हुए ग्रन्थ के जानने वाले श्रेष्ठ हैं और उनसे करने वाले श्रेष्ठ हैं ॥ १०३ ॥ तप अर्थात् आश्रम के लिये विहित कर्म और विद्या अर्थात् आत्म ज्ञान ये दोनों ब्राह्मण को पर अर्थात् उत्कृष्ट निःश्रेयसकर अर्थात् मोक्ष के साधन हैं इन में से तप से पाप को नाश करता है और ब्रह्मज्ञान से मोक्ष को प्राप्त होता है ॥१०४॥

एष सर्वाणि भूतानि पञ्चभिर्व्याप्य मूर्तिभिः ।
जन्मवृद्धि क्षयैर्नित्यं संसारयति चक्रवत् ॥ १२४ ॥

मनुस्मृति अध्याय १२

अर्थ—यह आत्मा सब प्राणियों को शरीर के आरम्भ करने वाले पृथिवी आदि पांच महाभूतों से ग्रहण करके पूर्व जन्म के अर्जित कर्मों की अपेक्षा से उत्पत्ति स्थिति विनाशों से रथ आदि के चक्र के समान वारम्वार फिरने से मोक्ष तक संसारी करता है ॥ १२४ ॥

कृतज्ञाद्रोहिमेधाविशुचिकल्पानसूयकाः ।
अध्याप्या धर्मतः साधुशक्ताप्तज्ञानवित्तदाः ॥२८॥

याज्ञवल्क्य० आचारा० ब्रह्मचारिप्रकरण २

अर्थ—कृतज्ञ, अद्रोही, बुद्धिमान्, शुद्ध, नीरोग, अनिंदक साधु, शक्त, आप्त तथा ज्ञान और धन के दाता इनको धर्म से पढ़ावे ॥ २८ ॥

मधुमांसाञ्जनोच्छिष्टशुक्तस्त्रीप्राणीहिंसनम् ।
भास्करालोकनाश्लीलपरिवादादिवर्जयेत् ॥ ३३ ॥

याज्ञवल्क्य० आचारा० ब्रह्मचारि २

अर्थ—शहत, मांस, अंजन, गुरु का उच्छिष्ट, कठोर वचन, स्त्री संग, प्राणियों की हिंसा, उदय अस्त के समय सूर्य को देखना और झूठ बोलना और गन्ध माल्य को धारना इन सब को ब्रह्मचारी वर्ज दे ॥ ३३ ॥

क्रीडां शरीरसंस्कारं समाजोत्सवदर्शनम् ।
हास्यं परगृहे यानं त्यजेत्प्रोषितभर्तृका ॥ ८४ ॥

याज्ञवल्क्य० आचारा० विवाह० ३

अर्थ—जिस स्त्री का पति परदेश में हो वह गेंद आदि से क्रीडा और उबटने आदि से शरीर का संस्कार, जनों का समूह और विवाह आदि उत्सवों का दर्शन, हंसी और पराये घर में गमन इन सब को त्याग दे ॥ ८४ ॥

रक्षेत्कन्यां पिता विन्नां पतिः पुत्रास्तु वार्धके ।
अभावे ज्ञातयस्तेषां न स्वातंत्र्यं क्वचित्स्त्रियाः ॥८५॥

याज्ञवल्क्य० आचारा० विवाह० ३

अर्थ—विवाह से पहले कन्या की निंदित कर्मों से पिता, विवाह के अनन्तर पति और पति के अभाव में पुत्र रक्षा करे और यदि वृद्ध अवस्था में ये न हों तो जाति के मनुष्य और जाति के मनुष्य भी न हों तो राजा रक्षा करे क्योंकि इस वचन से पितृकुल और पतिकुल के अभाव में राजा को ही प्रभु और रक्षक लिखा है इससे स्त्रियों को किसी अवस्था में स्वतन्त्रता नहीं ॥ ८५ ॥

तवाहं वादिनं क्लीबं निर्हेतिं परसंगतम् ।
न हन्याद्विनिवृत्तं च युद्धप्रेक्षणकादिकम् ॥३२६॥

याज्ञवल्क्य० आचारा० राजधर्म० १३

अर्थ—तेरा हूं ऐसे कहता हुआ, नपुंसक, निरायुध, दूसरे से युद्ध करता हुआ, युद्ध से निवृत्त हुआ, युद्ध को देखने वाला और आदि शब्द से अश्व सारथि इनको न मारे ॥३२६॥

* श्रुताध्ययनसम्पन्ना धर्मज्ञाः सत्यवादिनः ।
राज्ञा सभासदः कार्या रिपौमित्रेच ये समाः ॥ २ ॥

याज्ञ० व्यवहार० साधा० व्यव० मातृ० प्र० १

अर्थ—मीमांसा आदि शास्त्रों के श्रवण और पठन से युक्त धर्म के जानने वाले सत्यवादी और शत्रु और मित्र में समान राजा को सभासद करने ॥ २ ॥

यतिपात्राणिमृद्वेणुदार्वलाबुमयानिच ।
सलिलंशुद्धिरेतेपांगोवालैश्चावघर्पणम् ॥ ६० ॥

याज्ञ० प्राय० यतिधर्म० ४

अर्थ—मिट्टी, वेणु, काष्ट, तुम्बी इनके बने हुए यतियों के पात्र होते हैं और उनकी जल से और गौ के बालों के घिसने से शुद्धि होती है ॥ ६० ॥

सन्निरुद्ध्येन्द्रियग्रामंरागद्वेषौप्रहायच ।
भयंहित्वाचभूतानाममृती भवति द्विजः ॥६१॥

याज्ञ० प्राय० यतिधर्म ४

अर्थ—इन्द्रियों को जीतकर राग द्वेष को निवृत्त करके प्राणियों को भय के न देने से द्विज मोक्ष को प्राप्त होता है ॥६१॥

---

* मूल श्लोक में श्रुताध्ययन शब्द पड़ा है जिस का अर्थ भाषाकार ने मीमांसादि शास्त्र किया है किन्तु इस प्रकरण के देखने से नीति आदि शास्त्रों का ज्ञाता होना लिखना चाहिए था क्योंकि श्रुतशब्द से सब विद्याओं का ग्रहण किया जा सकता है ।

कर्तव्याशयशुद्धिस्तुभिक्षुकेणविशेषतः ।

ज्ञानोत्पत्तिनिमित्तत्वात्स्वातंत्र्यकरणायच ॥ ६२ ॥

याज्ञ० प्राय० यतिधर्म० ४

अर्थ—भिक्षुक विशेष से अन्तःकरण की शुद्धि को करे क्योंकि वह ज्ञान की उत्पत्ति में कारण है और आत्म ज्ञान में स्वतन्त्र करने वाली है ॥ ६२ ॥

सत्यमस्तेयमक्रोधोह्रीः शौचंधीर्धृतिर्दमः ।

संयतेंद्रियताविद्याधर्मः सर्वउदाहृतः ॥ ६६ ॥

याज्ञ० प्राय० यति धर्म ४

अर्थ—सत्य, चोरी न करना, क्रोध से रहित होना, लज्जा शौच, बुद्धि, धैर्य, दम, इन्द्रियों को जीतना और आत्म ज्ञान ये सम्पूर्ण धर्म का स्वरूप हैं ॥ ६६ ॥

निःसरंतियथालोहपिंडात्तप्तात्स्फुलिंगकाः ।

सकाशादात्मनस्तद्वदात्मानः प्रभवंतिहि ॥ ६७ ॥

याज्ञ० प्राय० यतिधर्म० ४

अर्थ—जैसे तपाये हुए लोह के गोले में से स्फुलिंग निकलते हैं इसी प्रकार आत्मा के सकाश से आत्मा (जीव) उत्पन्न होते हैं ॥ ६७ ॥

इति स्मृतिश्लोकसंग्रहः